* ओ३म् *

सन्त-वचन-संग्रह

(तृतीय पुष्प)

सम्पादक—

श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज

वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

पुस्तक प्राप्तिस्थान—

(१) वानप्रस्थाश्रम पुस्तकालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)

(२) गुप्ता एण्ड कम्पनी, टोहाना, जि०-हिसार (हरयाना)

(३) गुप्ता एण्ड कम्पनी, खारी बावली, दिल्ली-६

ध्यान रख !

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।

अथर्ववेद २-३०-४

जो तेरे अन्दर हो वही बाहिर हो

और जो बाहिर हो

वही अन्दर हो ।

* ओ३म् *

सन्त-वचन-संग्रह

(तृतीय पुष्प)

●

सम्पादक—
श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज
वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)
(ज़िला सहारनपुर, उत्तरप्रदेश)

●

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—

(१) वानप्रस्थाश्रम पुस्तकालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)

(२) गुप्ता एण्ड कम्पनी, टोहाना, ज़िला हिसार।

(३) गुप्ता एण्ड कम्पनी, खारी बावली, दिल्ली-६

प्रथम बार २००० | भाद्रपद सं० २०२४ | मूल्य ५० पैसे

❀ ओ३म् ❀

प्रकाशक का निवेदन

प्रभु की कृपा से वानप्रस्थाश्रम में निवास का सुअवसर मिला। पूज्य श्री विवेकानन्द जी महाराज जो इस आश्रम में पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से रह रहे हैं, उनके सत्संग का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने स्वाध्याय के प्रसंग में अपनी रुचि के अनुकूल कतिपय सन्तों के कुछ अमृतमय वचनों का संग्रह कई कापियों में किया हुआ है। जो भी व्यक्ति इन कापियों को देखता है, उसे ही बहुत आनन्द और लाभ प्राप्त होता है। इस संग्रह का प्रथम पुष्प एक सज्जन ने इसी वर्ष छपवाया है, उस को पढ़कर न केवल साधारण जनता ने बल्कि बड़े २ विद्वान् पंडितों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। द्वितीय पुष्प थोड़े दिन हुए एक माता द्वारा छपवाया गया है। तीसरे पुष्प के छपवाने की मेरे मन में भावना हुई। मेरी प्रार्थना पर पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने कृपापूर्वक इसके छपवाने की स्वीकृति प्रदान करदी है। सन्तों के वचनों में बड़ा प्रभाव होता है, उन से मनुष्यों का जीवन ही बदल जाता है। पूर्ण आशा है कि प्रभु कृपा से जिज्ञासु जन ऐसी सुन्दर अमृतमयी वाणी का स्वाध्याय करके आनन्द प्राप्त करेंगे और अपने जीवन को सफल बनायेंगे।

वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर
६—७—६७

विनीत :
बृजलाल गुप्त
टोहाना, जि० हिसार

* ओ३म् *

सन्त-वचन-संग्रह

(तृतीय पुष्प)

१. आनन्दस्वरूप परमेश्वर को छोड़कर सांसारिक सुखों की ओर दौड़ने वालों के आत्म-प्रदेश में आनन्द का अकाल पड़ जाता है, उस अकाल में फंसे हुए प्राणियों का आत्मा भूखा रहता है वे अपना जीवन व्यर्थ खोते, तथा दुःखों में पड़े रहते हैं।

१. जो जीवन के मूल में रहने वाले परमेश्वर को साधन का जल नहीं देता, उसका जीवन मुर्झा कर सूख जाता है।

३. निर्मल मन परमेश्वर तक पहुँचता है। विषय-विकारों से घिरे मन में संशय और अशाँति बनी रहती है।

४. दूसरों का सहारा लेने वाला सदा अशान्त दुःखी और दीन रहता है, परमेश्वर पर निर्भर रहने वाला नित्य तृप्त, सुखी रहता है।

५. परमेश्वर आनन्दरूप है मनुष्य उसे छोड़कर जब कृत्रिम और इन्द्रिय जन्य निर्जीव आनन्द की ओर बढ़ता है तभी वह दुःखों के भंवर में डूबता है।

६. मनुष्य संसार के क्षणिक सुखों में जी बहलाना चाहता है परन्तु इस कृत्रिम सुख से आत्मा को सन्तोष नहीं मिलता।

७. ईश्वर को भूल कर मनुष्य, निज-आनन्द को खोकर निर-आनन्द हो जाता है, वह भूल जाता है कि संसार के नियन्ता आनन्ददाता, भाग्य विधाता भगवान् हैं उन्हीं की ओर बढ़ने में आनन्द है।

८. इधर शरणागत भगवान् को अपना मन देता है उधर भगवान् उसके उद्धार का द्वार खोल देते हैं।

९. जब संकटों के घोर बादल वर्षा करते हैं ऐसे कठिन समय में सान्त्वना देकर रक्षा करने वाला एकमात्र परमेश्वर है।

१०. संसार चक्की के दो पाटों की भांति चलता है, रात्रि और दिवस उसके दो पाट हैं, चक्की में पड़ जाने वाला पिस जाता है परन्तु चक्की में पड़ कर भी जो कीले से लिपटा रहता है वह पिसने से बच जाता है। संसार रूपी चक्की का कीला परमेश्वर है, सारा संसार उसी के चारों ओर चल रहा है, परमेश्वर केन्द्र है और संसार परिधि की भांति उस पर घूमता है। संकटों में पिसने से पहले ही उसे पकड़ लेने में भला है, उसको पकड़ लेने का मार्ग अनन्य प्रेम है। उसके प्रेम का रस पीने वाले के

लिये संसार के सब रस फीके पड़ जाते हैं।

११. अपनी भूलों को सुधारने के लिये, न्यूनताओं को पूर्ण करने के लिये और निर्बलता को दूर करने के लिये जो सच्चे हृदय से प्रयत्न करता हुआ परमेश्वर की शरण लेता है और अपने को उन्हीं के हाथों सौंप देता है वही भगवान् का भक्त है। भगवान् उसका हाथ पकड़ कर उसे भवसागर से पार निकाल लेते हैं।

१२. कुछ न होकर अभिमान करना, अपने अपराधों को गुण मानना, अपने दोषों को छिपाने के लिये दूसरों पर दोष लगाना आदि अज्ञान है। जो प्रभु की शरण ग्रहण कर लेता है वह सरलता से अज्ञान को पार कर जाता है। फिर भी मनुष्य प्रभु को छोड़ कर मृत्यु सागर में गोते खाता है, वृत्त के टूटे हुए पत्ते की भांति गिर कर आँधी में उड़ता है, पानी में डूबता है, और धूप में जलता फुकता है, सब प्रकार दीन और निराश्रय होकर दुर्लभ नर देह को व्यर्थ खो देता है। यह कितने दुर्भाग्य की बात है।

१३. सच्ची भक्ति से जीव के सम्पूर्ण मल धुल जाते हैं। जीवन सफल होता है। शांति के मेघ उमड़ते हैं। और सर्वत्र आनन्द एवम् मधुरता बरसती है।

१४. कामनाओं के बीच में रहने से भक्त और भगवान् दूर-दूर रहते हैं।

१५. जिन्हें जीवन का विकास करना है, प्रभु का आनन्द-रस प्राप्त करना है, उन्हें दृढ़ व्रती बनना चाहिये, व्रत की आधार शिला पर ही सम्पूर्ण साधन टिकते हैं।

१६. परमेश्वर को पाने की भूख सब इच्छाओं को खा जाती है।

१७. परमेश्वर किसी भी समय अपने साथियों, शरणागतों का साथ नहीं छोड़ते। अन्तिम समय तक उनके साथ रहकर उन्हें प्रसन्न करते और उनकी रक्षा करते हैं।

१८. जीवन एक परीक्षा है, मृत्यु उसका परीक्षाफल है। जीवन में सफलता मिली, अथवा असफलता, कौन सी श्रेणी में उत्तीर्ण हुए, इन प्रश्नों का उत्तर मृत्यु देती है।

१९. अपने आपको जान लेना सबसे बड़ा ज्ञान है।

२०. जिसका स्वभाव भजन करने का बन जाता है, शील और संयम का भाव जिससे कभी नहीं छूटता, वह मृत्यु के समय भी अपने अभ्यस्त भाव में रहता है। व्याकुलता उसके अंग नहीं तोड़ती, वासना उसे नहीं डराती, चिन्ता खाने को नहीं दौड़ती, और

भय किसी प्रकार की वेदना नहीं दे पाता ।

२१. अभ्यास बालकपन से ही बनते हैं अच्छे अथवा बुरे प्रत्येक विचार और कर्म अपना अमिट प्रभाव डालते हैं अतः जीवन के आरम्भ काल से ही सावधान रहकर शुभ कर्म तथा भजन ध्यान आदि का अभ्यास डालना चाहिये ।

२२. हृदय में परमेश्वर को रखने के लिये पवित्रता हो, और निरन्तर उसकी ओर बढ़ने की उमंग हो, तब जीवन सफल होता है ।

२३. परमेश्वर के निरन्तर स्मरण से मन पवित्र रहता है, छल कपट की वृत्ति नहीं बनती, मन किसी को धोखा देने की इच्छा नहीं करता और शुभ कर्म स्वाभाविक होने लगते हैं; ऐसा न हो तो समझना चाहिये कि स्मरण केवल दिखावा है अभी हृदय के सिंहासन पर परमेश्वर नहीं विराजे हैं ।

२४. परमेश्वर का स्मरण गंगा की धारा के समान निरन्तर चलता रहना चाहिये, निरन्तर स्मरण की गंगा, प्रेम की यमुना और पवित्रता की सरस्वती के संगम में मुक्तिदाता त्रिवेणी बन जाती है ।

२५. जन्म के साथ मृत्यु लगी है, मनुष्य सदा मृत्यु के मुख में है अतः ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि किसी भी क्षण परमेश्वर का विस्मरण न हो । मृत्यु

को मंगलमय, मधुर तथा सुखदायक बनाने का प्रयत्न मनुष्यमात्र का कर्तव्य है।

२६. परमेश्वर का रूप अचिन्तनीय है मन और बुद्धि की पहुँच से परे है तर्क से परमेश्वर नहीं जाना जाता। मन और बुद्धि को उसके अर्पण कर देने वाला ही उसे जान सकता है परमेश्वर हृदय ग्राही है बुद्धि ग्राही नहीं।

२७. नित्य पूरा पाठ पढ़ने वाला, उसे याद करने वाला विद्यार्थी जैसे किसी भी समय परीक्षा के लिये तय्यार रहता है उसी प्रकार सदा परमेश्वर में मन लगाने वाला किसी भी समय मृत्यु से भयभीत नहीं होता। परमेश्वर से विमुख को भय चिन्ता घेरती हैं और किसी भी समय पकड़ जकड़ कर मृत्यु के पास ले जाती हैं वह रोते झींकते वहां जाता है।

२८. संयम अति आवश्यक है। मन का संयम टूटते ही मृत्यु खिल खिलाकर हंसती है और संयम हीन को भयभीत कर देती है।

२९. नित्य निरन्तर भक्ति से परमेश्वर का प्रेम उमड़ता रहे, तब अन्तिम समय प्रभु की प्राप्ति का आनन्द मिलता है।

३०. जिस प्रकार विद्वान् अपनी विद्या की रक्षा करता है, बलवान् बल की रक्षा करता है, धनवान् धन की

रक्षा करता है, इसी प्रकार आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी जिज्ञासु जन परमेश्वररूपी धन की रक्षा करते हैं।

३१. सुरक्षा के लिये देश, नगर और घरों के द्वारों पर प्रायः पहरा बिठा दिया जाता है जिस से कोई चोर लुटेरा अन्दर प्रवेश न करने पाये। इसी प्रकार आध्यात्मिक धन की रक्षा के लिये देह के द्वारों पर संयम का पहरा बिठाना चाहिये, जिस इन्द्रिय का संयम शिथिल हो जाता है उसी के द्वार से आध्यात्मिक पूँजी को काम क्रोधादि चोर डाकू चुरा ले जाते हैं।

३२. प्रभु नाम के जाप से मन वचन और कर्म में ऐसा बल आ जाता है जिसके सामने सांसारिक बाधायें नहीं ठहरतीं और सारा जीवन तथा अन्त समय आनन्दमय बन जाता है।

३३. सफलता हँसगामिनी है वह धीरे-धीरे चलकर साधक के पास आती है।

३४. नास्तिक अनेकों का सहारा लेता है और आस्तिक केवल एक भगवान् का।

३५. किसी भी राज्य-नियम में मनुष्य को मनुष्य बनाने की शक्ति नहीं होती। कानून दण्ड दे सकता है हृदय को नहीं बदल सकता, हृदय केवल ईश्वर के

भय से बदलता है।

३६. देह में प्राण रहते किसी भी क्षण प्रभु को नहीं भूलना चाहिये। जो कभी भी परमेश्वर को नहीं भूलता, उसे परमेश्वर भी कभी नहीं भूलते। उसके सुख में सुख को बढ़ाते हैं। दुःख में साथ देते हैं।

३७. सब प्रकार परमेश्वर की शरण हो जाने से आनन्द की प्राप्ति होती है। इस दुस्तर संसार के कष्टों से पार करने वाला एकमात्र परमेश्वर है। परमेश्वर की कृपा के बिना बन्धन नहीं छूटते।

३८. रात दिन मनुष्य सुख दुःख की तरंगों पर मारा-मारा फिरता है अतः साधन करके मनुष्य जन्म को सार्थक करना चाहिये, गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता, जो समय का सदुपयोग नहीं करते उन्हें लाचार होकर बार-बार जन्मना और मरना पड़ता है।

३९. परमेश्वर आनन्दरूप हैं, सुख अथवा आनन्द के बिना जीवन व्यर्थ है। अतः सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त करना प्रत्येक जीव का ध्येय है।

४०. परमेश्वर अनन्य भक्ति से मिलता है। अनन्य भक्ति का अर्थ है परमेश्वर को अपना सर्वस्व मानकर उसी के भजन ध्यान में लगे रहना, केवल एक परमेश्वर का ही आश्रय लेना, उसी में मन लगाना, उसी के लिये जीना तथा मरना अनन्य भक्ति है।

४१. परमानन्द में निमग्न रहने के लिये जीवन की प्रत्येक घड़ी में योग युक्त रहना, परमेश्वर से मिले रहना नितान्त आवश्यक है, अन्तिम स्वांस तक हृदय में प्रेम हो, निर्मल मन हो, तो मुक्ति हाथ जोड़कर सामने खड़ी रहती है।

४२. पवित्र निर्विकार और निष्पाप होकर परमेश्वर के साथ मिला हुआ जीवन अमृत का घर है उसमें परम आनन्द भरा रहता है इस अमृत की एक बूँद भी हाथ लग जाने से जीवन सफल हो जाता है।

४३. जो अपने दोष देखता है वही दोषहीन रह सकता है। पर-दोषों को देखने वाला सब से बड़ा दोषी है और पाप का भागी होता है।

४४. पापात्मा और पुण्यात्मा की पहचान दृष्टि और वाणी से होती है। पुण्यात्मा अपने दोषों को देखता है और मधुर हितकर तथा अभिमान रहित शीतल वाणी बोलता है। पापात्मा अपने दोष न देखकर पराये दोष देखता है और अभिमान भरे कटु तथा दुःखदायी वचन बोलता है।

४५. गुणों में दोष देखने वाले की बुद्धि उस भूमि के समान होती है जिसमें वर्षा होने पर भी तिनका नहीं जमता। जो प्रत्येक बात में, प्रत्येक मनुष्य में दोष देखता है उसमें गुण ग्रहण करने की योग्यता नहीं

रहती। निर्मल और निर्दोष मन में ही गुणों को धारण करने की योग्यता होती है।

४६. संसार के प्रलोभन, मोह ममता, राग द्वेष तथा विषय वासना जिसके मन को विचलित नहीं कर सकते, उसे प्रभु मिलते हैं।

४७. यत्नशील का भाग्य सदा जागा रहता है। यत्नवान के लिये सदा सत्युग रहता है। विकट परिस्थिति आने जाने पर भी जो तत्परता से साधना करता है उसका साथ प्रभु देते हैं।

४८. भजन, भोजन, भोग, भेषज, भाषण, भाव और भाषा, जिसमें से परमेश्वर का पवित्र भाव निकल जाता है वही सारहीन हो जाता है।

४९. वल बुद्धि और जगत् का सहारा नदी के किनारे रेत की दीवार के समान है, परमेश्वर का सहारा सुदृढ़ किले के समान है।

५०. किसी दूसरी ओर न देखकर एकमात्र अपने ध्येय परमेश्वर की ओर देखना ही भक्त जीवन का चिन्ह है।

५१. गया दिन लौट कर नहीं आता, अतः पापों की गठरी भारी न करके इसी क्षण से कल्याण मार्ग पर चलना चाहिये।

५२. संसार में प्रायः किसी न किसी प्रकार की अशान्ति बनी रहती है। अशान्ति की जड़ वासना-इच्छा

है। आवश्यकताएँ जितनी अधिक बढ़ती हैं उतनी ही जीवन में अशांति और कृत्रिमता आती है। जीवन की सरलता को तड़क भड़क, छल कपट ढक लेते हैं, तब अशान्ति भड़कती है।

५३. भक्ति सर्व क्लेशों को काट डालती है, भक्ति से मुक्ति मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती, कठिन गुत्थियां सुगमता से सुलझ जाती हैं। भक्ति जीव को आनन्द विभोर कर देती है और भक्त को भगवान् से मिला देती है।

५४. सब प्रकार परमेश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा को मिला देना, और किसी भी परिस्थिति में उससे अलग न होना शरणागति योग है। यह शरीर मुक्ति धाम तक पहुँचाने के लिये दिव्य रथ है। यह शरीर भवसागर को पार करने के लिये दिव्य नैया है; परमेश्वर इसका खिवैया है अतः इस शरीर को उसके हाथों में सौंप देना ही सुख तथा समुन्नति और सुरक्षा का सर्वोत्तम साधन है।

५५. परमेश्वर में मन रखकर किया हुआ छोटे से छोटा यज्ञ, दान आदि कर्म भी महान् फल देता है। केवल कर्मों का इतना महत्त्व नहीं है जितना परमेश्वर को साथ रखकर कर्म करने का।

५६. ज्ञान जीवन का मधुर फल है, जीवन की जड़ संयम

भूमि में जितनी गहरी जमती है और सदाचार का जितना जल दिया जाता है उतना ही जीवन हरा भरा रहता है और ज्ञान का मधुर फल लगता है।

५७. पाप मनुष्य के चारों ओर बिखरा पड़ा रहता है जितना चाहे उसे बटोर सकता है। वह वायु और पानी से भी अधिक सुलभ है। पाप से वही छूटता है जो ईश्वर में श्रद्धा विश्वास रखता है।

५८. जगत् में मनुष्यजीवन का एकमात्र लक्ष्य परमेश्वर को प्राप्त करना है। इसके लिये पुरुषार्थ ही वास्तव में पुरुषार्थ है। जो परमेश्वर की ओर बढ़ता है उसे वे अपनी गोदी में अवश्य लेते हैं।

५९. परमेश्वर उन पर अनुग्रह करता है जो परमेश्वर को अपने हृदय मन्दिर में आसन देकर उसकी देख-रेख में अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

६०. परमेश्वर का आश्रय लेना जीवन है और उसका साथ छोड़ देना मृत्यु।

६१. परमेश्वर दुःख देकर सावधान करते हैं। दुरितों से दूर हटाते हैं और प्राणी को जगाते, सावधान करते रहते हैं।

६२. श्रद्धा के बिना ज्ञान नहीं मिलता, विश्वास की धुरी टूटते ही सद्भावनाओं का रथ गिर पड़ता है।

६३. मनुष्य अपने को कर्ता धर्ता मानकर अपने आप

अपने लिये संकटों का जाल बिछाता है और उसमें फंस जाता है।

६४. मनुष्य की सब इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं, वह चाह में भूल भी कर लेता है इसी कारण उसे अपने आप को परमेश्वर की इच्छा पर छोड़कर साधन में अग्रसर होना चाहिये, आगे बढ़ने वाले के लिये परमेश्वर सहायता देते हैं।

६५. भूल करके जो नहीं पछताता, उसे सदा ही पछताना पड़ता है। जो अपने अपराधों को स्वीकार नहीं करता, वह सदा अपराधी बना रहता है। जो क्षमा नहीं मांगता, उसका सौभाग्य अस्त हो जाता है।

६६. जगत् में प्रवेश करने से पहले जगत् में निर्लिप्त रहना सीखना चाहिये। भक्ति से भरा मनुष्य ही परमेश्वर का प्रिय है। जब इन्द्रियों में पवित्रता आ जाती है, विचार उच्च हो जाते हैं, मन में मैल नहीं रहता, बुद्धि में निश्चलता आ जाती है और चित्त चंचलता छोड़कर परमेश्वर में रस का अनुभव करता है उसे भक्ति कहते हैं।

६७. जैसे प्यासे को जल, भूखे को भोजन, लोभी को धन और थके हुये को विश्राम चाहिये, इसी प्रकार जिसे परमेश्वर की चाह है उसे परमेश्वर मिलता है।

६८. मन को प्रभु प्रेम के जल में भिगो देने से वह भारी

हो जाता है और उसकी चंचलता मिट जाती है।

६९. आलस्य में पड़े रहने और व्यर्थ की बात चीत करने से परमेश्वर का साथ छूट जाता है।

७०. शरीर सुन्दर हो, स्वच्छ हो, परन्तु मन मैला हो तो पवित्रता का ध्येय पूरा नहीं होता।

७१. द्वेष के आते ही उसका पुत्र पतन भी आ धमकता है अतः श्रेष्ठ पुरुष द्वेष से बहुत दूर रहते हैं।

७२. चाह के साथ चिन्ता लगी रहती है। कोई कामना शोक से रहित नहीं होती। भक्त इच्छा रहित होकर प्रभु की शरण में बैठता है और उसके रस का आस्वादन करता है।

७३. आसक्ति उलझन में डालती है और चलने वाले को पकड़ कर बैठा लेती है, परमेश्वर की ओर चलने वाला आसक्ति से दूर रहता है।

७४. अधिक बोलना, व्यर्थ बोलना और बिना विचारे बोलना अज्ञानता के लक्षण हैं। भक्तजन शब्दों को तोल कर बोलते हैं जहां नहीं बोलना चाहिये वहां मौन रहते हैं और सदा मनन करते हैं।

७५. सुख और दुःख को चुपचाप सह लेना और जिस किसी प्रकार से शरीर का निर्वाह हो, उसमें सन्तुष्ट रहना धीर मनुष्य का लक्षण है।

७६. जिसे सन्तोष नहीं है उसे तृष्णा डस लेती है।

७७. केवल जान लेने का नाम ज्ञान नहीं है। भौतिक ज्ञान, पदार्थ ज्ञान आदि से जानकारी अवश्य बढ़ती है परन्तु यदि उससे आन्तरिक सत्ता के विकास में सहायता नहीं मिलती, तो वह जानकारी, वह ज्ञान दुःख तथा अशान्ति की वृद्धि करता है। ज्ञान वही सार्थक है जो आत्मा परमात्मा को जानने में सहायक हो।

७८. मनुष्य को देवता या दानव बनाने वाली इन्द्रियां हैं, इन्द्रियां ही ज्ञान का घट भरती हैं और इन्द्रियां ही रीता करती हैं।

७९. शरीर बहुमूल्य है परन्तु जैसे रत्न का मूल्य उसकी आब पर निर्भर है वैसे ही शरीर का मूल्य अन्तः-करण की पवित्रता पर निर्भर है।

८०. जो परमेश्वर से दूर रहता है उससे परमेश्वर भी दूर रहता है।

८१. कामनाओं के पीछे दौड़ने वाले परमेश्वर के पास नहीं जाते, अतः परमेश्वर भी उनके पास नहीं आता। जो उपासना द्वारा उसके पास बैठने का प्रयत्न करते हैं परमेश्वर उनके पास रहता है। न मानने वाले के लिये वह नहीं है, मानने वाले के लिये वही सब कुछ है।

८२. परमेश्वर को जानने के लिये कहीं भटकने की जरू-

रत नहीं है। वह सबके हृदय देश में स्थित है। प्रेम पूर्वक हृदय में झांकने की जरूरत है।

८३. संसार में सुख राई के बराबर है और दुःख पर्वत के समान है। बड़े-बड़े धीर पुरुष भी कष्टों में विचलित हो जाते हैं। जीवन के युद्ध में विजय उसको मिलती है जो सुख दुःख हानि लाभ आदि द्वन्द्वों को साहस से सहन करते हैं।

८४. शास्त्र पढ़ने तथा उपदेश सुनने की महिमा महान् है। सुने हुए को तत्परता के साथ आचरण में लाने वाले को ही विशेष लाभ हुआ करता है, किसी की न सुनकर मनमानी करने वाले को संसार सागर की लहरें थपेड़े मार-मार कर इधर से उधर और उधर से इधर बार-बार गिराती हैं और दुःखों की चट्टान से टकराकर चकनाचूर कर देती हैं।

८५. केवल मर जाना ही मृत्यु नहीं है। अज्ञान में रहकर दुःख भोगते, सिसकते और रोते हुए जीवन बिताने का नाम भी मृत्यु है।

८६. मनुष्य केवल ज्ञान की कथा सुनता है, ज्ञान की आंख नहीं खोलता, वह ज्ञान की चर्चा करता है पर ज्ञान के सिर पर पैर धर कर चलता है। सच्चा ज्ञान वही है जो आंखें खोलदे, जिससे शरीर और आत्मा का अन्तर जान लिया जाय।

८७. मनुष्य विश्व शांति की कितनी ही बातें करता रहे परन्तु जब तक व्यक्ति का सुधार नहीं होगा और मनुष्य अपने चरित्र को उज्ज्वल नहीं बनायेगा, तब तक शांति का स्वप्न अधूरा रहेगा।

८८. संसार में वह सदा दुःखी रहता है जिसकी तृष्णा बड़ी है। तृष्णा कभी भी पूरी नहीं होती। असन्तोष तृष्णा का पति है। उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु के साथ क्षय लगा रहता है, वह निरन्तर घटती है परन्तु तृष्णा एक बार उत्पन्न होकर बढ़ती ही जाती है। दस प्राप्त होने पर सौ, सौ प्राप्त होने पर हजार, अरब, खरब, असंख्य पा जाने पर भी तृष्णा का पेट नहीं भरता।

८९. प्रमाद, आलस्य और निद्रा ये तीन तमोगुण के पुत्र जिसके पीछे पड़ जाते हैं उसे जीते हुए ही मरा समझना चाहिये।

९०. बहुमूल्य रत्नों के बदले भी आयु का एक क्षण नहीं मिल सकता, ऐसे अमूल्य जीवन को जो व्यर्थ गंवा देता है वह नर नहीं नराधम कहा जाता है।

९१. प्रमादी बिना कर्म किये सुख की कामना करता है और प्रारब्ध की आड़ लेकर आयु को व्यर्थ खोता है।

९२. धर्म ग्रन्थों में संसार को वृक्ष की उपमा दी है। इस वृक्ष के मूल में अमृत और विष दोनों हैं। कुशल और

साधनशील साधक अमृत ग्रहण करते हैं, विष को त्याग देते हैं। अविवेकी और साधन हीन जन विष को लेकर दुःखी रहते दिन काटते हैं।

६३. सच्ची शरणागति वही है जिसमें भक्त भगवान् से मिला रहे, किसी भी समय निराश न हो, दुःख आ पड़ने पर अधीर न हो और आगे ही बढ़ता रहे। ऐसा स्वभाव बना ले कि सहज भाव से मन आनन्दकन्द सच्चिदानन्द भगवान् में टिका रहे, उमंग उत्साह और प्रसन्नता खण्डित न हो।

६४. जगत् में ऐसा कोई नहीं, जो किसी की शरण न लेता हो, आस्तिक केवल एक परमेश्वर की शरण लेता है। नास्तिक दर-दर भटकता है। कामना पूर्ति के लिये जन-जन की शरण लेता है।

६५. प्रभु की शरण में जाने के लिये किसी प्रकार का मान गुमान, अभिमान शेष नहीं रखना चाहिये। जब प्राणी अमानी होकर सब को मान देता है तब उसे मान और भगवान् दोनों मिल जाते हैं।

६६. दुःखों से व्याकुल हो जाने वाला दृढ़ता से परमेश्वर की शरण नहीं लेता, अविश्वास उसे पकड़ लेता है, संशय घेरता है और वह अपने को डूबा हुआ सा समझने लगता है। प्रभु की शरण लेने से, उन पर अटल विश्वास करने से सुख दुःख आदि द्वन्द्वों को

सहन करने की शक्ति मिलती है, विश्वास बढ़ता है और ऐसी शक्ति आ जाती है जो एक दिन निर्द्वन्द्व कर देती है।

९७. अपनी आत्मनिधि को भूल जाने के कारण, उससे पृथक् हो जाने के कारण जीव अंधेरे में भटक रहा है और दुःखी हो रहा है। अज्ञान का पर्दा हटते ही अपनी निधि को प्राप्त कर कृत्कृत्य हो जाता है।

९८. जो ऊपर उठने का प्रयत्न करता है उसे परमेश्वर अमृत रस से सींचता है।

९९. ज्ञान गम्भीर और भारी है, दुर्बल इन्द्रिय और मन ज्ञान का भार उठाने में असमर्थ रहते हैं।

१००. परमेश्वर जब जैसा उचित समझता है वैसा करता है। मनुष्य अपनी नासमझी के कारण दुःखी होता है। मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य है उस परम पिता की इच्छा में अपनी इच्छा मिला देना।

१०१. प्रभु का आश्रय ही सच्चा सहारा है, वही सबका बेड़ा पार लगाने वाला है।

१०२. हम सबकी चिन्ता करने वाला परमेश्वर है। तब यह चिन्ता रूपी बोझा व्यर्थ ही हम क्यों ढोते फिरें, हमें तो निश्चिन्त होकर अपना साधन करते रहना चाहिये।

१०३. उत्साह के साथ निरन्तर साधन करना अभ्यास का

प्राण है। निर्जीव और बे मन से किये गये शिथिल अभ्यास से कुछ नहीं हो सकता।

१०४. अपनी सच्ची आत्मा को इस संसार के मोहक सुखों के बदले न बेचो।

१०५. मनुष्य अपने लक्ष्य को दृष्टि में रखकर सीधा तीर की भांति चला चले, न दायें देखे न बायें, यदि इधर उधर दृष्टि जाती है तो समझो कि निष्ठा स्थिर नहीं है।

१०६. यदि तुम आस्तिक हो तो सदा प्रसन्न, निर्भय और निश्चिन्त रहें।

१०७. यदि तुम सुखी रहना चाहते हो, तो अपने चारों ओर ईश्वर की कृपा को देखो। भविष्य में सुनहरे स्वप्न देखने का स्वभाव बनाओ, सदैव के लिये मन में यह बात बिठालो कि तुम्हारा कल अत्यन्त प्रकाशमय, मधुर और आनन्दमय होगा।

१०८. हंसो, प्रसन्न रहो, तो संसार तुम्हारे साथ हंसेगा। रोओगे, दुःखी रहोगे, तो रोने में तुम्हारा साथ कोई न देगा।

१०९. सत्संग तथा सत् शास्त्र के सुनने से ही जब चित्त को बहुत शान्ति मिलती है तो उनके कथनानुसार आचरण से कितना सुख और शान्ति मिलेगी, इसका अनुमान मनुष्य स्वयं करे।

११०. संशय साधक का सबसे बड़ा शत्रु है। संशय को जड़ से निर्मूल कर देना चाहिये। मन में दुविधा बनी रहने से अशान्ति बढ़ती है।

१११. आचरण में न आने वाला ज्ञान बोझा मात्र है।

११२. जब उपासक में कोई सांसारिक कामना, इच्छा नहीं रहती, तब उसे वास्तविक आनन्द का अनुभव होता है।

११३. जब तुम दिल के मकर छोड़ कर, सरल, सीधे हो जाओगे, तब तुम्हारे भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल सुखदाई हो जायेंगे।

११४. अनेक दुःखरूपी कीटाणु आस पास क्यों न घूमते रहें, मत डरो, भगवान् का हाथ अपने सिर पर समझो।

११५. लोग अच्छा कहें या बुरा, किन्तु तुम अपने आदर्श को सर्वदा आँखों के सामने रखकर शेर के समान आगे बढ़ते रहो।

११६. हम तभी सफल मनोरथ हो सकते हैं जब सदैव अपनी ओर देखें, दूसरों को न देखें।

११७. वास्तविक उन्नति तो उस समय प्रारम्भ होती है जब मनुष्य सभी बाहरी पदार्थों से मुख मोड़कर अन्तर के अनन्त आनन्द की ओर अग्रसर होता है।

११८. भय को हृदय में स्थान मत दो, भूतकाल की अस-

फलता को स्मरण करके उदास न हो, भविष्य की चिन्ता मत करो, वर्तमान का सदुपयोग करो, इस प्रकार की भावना तुम्हें प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रक्खेगी।

११६. जिनके जीवन का लक्ष्य भगवान् होते हैं जगत् की उलझनें उनके मार्ग में रोड़े नहीं अटका सकतीं।

१२०. ईश्वर जिस पर प्रसन्न होता है उसे नदी जैसी दानशीलता, सूर्य जैसी उदारता, और पृथ्वी जैसी सहनशीलता प्रदान करता है।

१२१. दुनियां तभी पवित्र और सुन्दर हो सकती है जब हम स्वयं पवित्र और सुन्दर हों।

१२२. संसार में सभी सुख चाहते हैं परन्तु किसी को पूर्ण अखण्ड स्थाई सुख नहीं मिलता, सुख के लिये भटकते-भटकते जीवन समाप्त हो जाता है और सुख आगे-आगे सरकता जाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य जिन प्राकृतिक वस्तुओं से सुख चाहता है उनमें सुख है ही नहीं। किसी को कोई वस्तु वहीं से तो मिलेगी, जहां वह होगी। हम बालू से तेल निकालना चाहें अथवा जल से घृत निकालना चाहें तो निराश ही होंगे, न बालू में तेल है और न जल में घृत है। तेल के लिये तिल, सरसों आदि की और घृत के लिये दुग्ध की आवश्यकता है। इसी

प्रकार पूर्ण अखण्ड नित्य आनन्द एकमात्र प्रभु में ही है, वे ही अनन्त आनन्द के सागर हैं, अतएव आनन्द चाहते हो तो प्रभु के भजन ध्यान में मन लगाओ, वृत्तियों को अन्तर्मुखी करो।

१२३. केवल बातों से परमात्मा का साक्षात्कार होना असम्भव है। वैराग्य से अन्तःकरण के शुद्ध होने और अभ्यास द्वारा अन्तःकरण की एकाग्रता से मुमुक्षु को परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

१२४. यह जिज्ञासा की कमी है जब कोई कहता है कि मुझे अमुक अमुक परिस्थितियों ने कल्याण मार्ग में चलने से रोका हुआ है, मेरी परिस्थितियाँ मेरे अनुकूल नहीं, यह काम अभी अधूरा है, यह कार्य करना शेष है इत्यादि। मैं आप से एक बात पूछता हूँ कि आप दुकान के काम में तल्लीन हैं, बड़े ग्राहक आ रहे हैं माल खूब बिक रहा है और आपने सोचा हुआ है कि चार बजे दुकान बन्द करके अमुक विवाह में शामिल होना है, फिर सिनेमा जायेंगे, फिर मित्र के यहां दावत में जाना है, इतने में अकस्मात नौकर आकर कहे कि घर में आग लग गई है तो फिर सब से पहले क्या करोगे, आग बुझाने ही दौड़ोगे। यदि ग्राहक हाथ पकड़कर कहे कि लाला जी इतनी जल्दी क्या है मुझे बहुत माल लेना है

इसमें आपको बहुत लाभ होगा, मुझे माल देकर चले जाना। उस समय क्या उस ग्राहक की बात पर आप ध्यान देंगे, कदापि नहीं; तब तो शीघ्र ही दुकान बन्द करके, सारे दूसरे विचारों को भुलाकर घर की ओर आग बुझाने को ही दौड़ेंगे। इसी प्रकार यदि हमें यह निश्चय हो जाय कि अन्दर आग लग रही है, सब कुछ लुटा जा रहा है। इस प्रकार ऐसी तीव्र लगन जिसके हृदय में प्रभु दर्शन के लिये जाग गई हो, उसको फिर संसार की बड़ी से बड़ी रुकावट भी नहीं रोक सकती, कहावत भी है कि भक्त की लगन और नदी का प्रवाह किसी के रोके नहीं रुकता।

१२५. अरे अपने को भूल जाने वाले जिज्ञासु! तू पागल की तरह कहां भटक रहा है, लौट आ! लौट आ!! अपने आनन्द साम्राज्य में यहां रोग, शोक, दुःख ज्वाला आदि कुछ भी नहीं है, केवल आनन्द-परमानन्द।

१२६. तुम्हारी अध्यात्मिक क्षुधा वास्तविक तथा चिरस्थाई होनी चाहिये, तभी तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति होगी, तथा तुम सदा इस पथ का अनुगमन कर सकोगे।

१२७. वाह्य भूसी से ही सन्तुष्ट न होओ, इन प्राकृतिक

दृश्यों में न फंस रहो, हृदय के भीतर गहरा गोता लगाओ।

१२८. जिन में साहस तथा धैर्य है उन्हें ही सफलता मिलती है।

१२९. आन्तरिक संग्राम में वीर योद्धा बनो और इस अध्यात्मिक संग्राम में विजयी होओ।

१३०. कैसी भी परिस्थति क्यों न आवे सदा बहादुर बने रहो और विजय प्राप्त करो।

१३१. अपने में सहनशीलता लाओ, इस मार्ग में तुम्हें अनेक बाधाओं, कठिन परीक्षाओं का सामना करना पड़ेगा, पर कभी भी निराश न होओ, आगे बढ़ते चलो। तुम्हारी श्रद्धा को परखने के लिये ही प्रत्येक कठिनाई आया करती है।

१३२. तुम्हारा एकमात्र कर्त्तव्य ईश्वर का साक्षात्कार करना है। शाश्वत आनन्द तुम्हारी स्थाई सम्पत्ति है। इसको प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

१३३. जीने का अर्थ ही है प्रभु को ढूंढना, तथा बाधाओं पर विजय प्राप्त करना।

१३४. यह जीवन प्रभु की उत्तम देन है। अरे साधक ! प्रति क्षण का सुन्दर उपयोग कर।

१३५. यदि तुम सरल और नम्र हो, तो तुम्हारा जीवन

परम सुन्दर है ।

१३६. सारे मानवों का लक्ष्य ही एक आदर्श को प्राप्त करना है । शोक एवम् दुःखों का सर्वथा नाश तथा परम आनन्द का अनुभव ।

१३७. कामनाएं मनुष्य को भ्रांत बना देती हैं । विवेक रूपी खड्ग से कामनाओं का कत्ल कर डालो ।

१३८. मनुष्य भौतिक विषय सुखों के पीछे पड़े रहते हैं । इसी कारण ईश्वर के साथ मनुष्य का जो सम्बन्ध है उसे जानने का विचार ही मन में नहीं आता ।

१३९. यदि तुम सन्मार्ग पर हो तो आलोचनाओं की चिन्ता न करो । सदा प्रसन्न मुख तथा आत्म विश्वासी बनो, उदासी तथा शोक का कोई कारण नहीं, तुम अमर आनन्दमय आत्मा हो ।

१४०. कम बोलो, वाणी पर नियन्त्रण करो, होठों से बाहर निकालने के पहले ही अपने शब्दों पर विचार करलो ।

१४१. अपमान को सहन करो, अपकार को सहन करो, इससे तुम्हें अनन्त शक्ति तथा आत्मबल की प्राप्ति होगी ।

१४२. एकाग्र मन के साथ हृदय के भीतर गहरा गोता लगाओ, सारी कल्पनाओं का त्याग करो, हवाई किलों का बनाना बन्द करो, घमण्ड, पाखंड, छल,

कपट, अभिमान आदि का त्याग करो।

१४३. प्रत्येक अवस्था में मन का सन्तुलन बनाये रक्खो, यह बहुत ही आवश्यक है।

१४४. इन्द्रियां मनुष्य की शत्रु हैं, ये प्राणी को बहिर्मुख बना देती हैं और मानसिक शान्ति को हर लेती हैं, इनका साथ न दो, इनका निग्रह करो, दमन करो, इन्द्रियों के दमन से मानसिक शान्ति तथा आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

१४५. अधिकतर मनुष्य साँसारिकता में निमग्न हैं। उन्हें तो समय ही नहीं मिलता कि वे आत्मा परमात्मा के बारे में विचार करें। सूर्य उदय होता है और मन पुनः खाने पीने में दौड़ने लगता है, इसी प्रकार सारा जीवन ही बीत जाता है।

१४६. शिक्षक तथा सभ्य जन भी अन्तःनिरीक्षण करना नहीं जानते, वे केवल बुद्धि का विकास करते हैं, कुछ धन कमाते हैं, कुछ पद पदवी प्राप्त करते हैं और आत्मज्ञान को प्राप्त किये बिना ही इस संसार से चल बसते हैं, क्या यह दुःख की बात नहीं है?

१४७. जिसने मन को वश में किया है वही वास्तव में सुखी तथा स्वतन्त्र है। शारीरिक स्वतन्त्रता कोई स्वतन्त्रता नहीं। यदि मनुष्य इच्छाओं, तृष्णाओं का गुलाम है तो फिर वह सुखी कैसे रह सकता है।

वह पाल रहित नौका के समान है। नदी में तृण जैसे डांवाडोल रहता है उसी तरह उसका जीवन भी है, वास्तविक वीर तो वही है जिसने मन को वशीभूत किया है। मन पर विजय ही वास्तविक विजय है, स्वतन्त्रता है।

१४८. स्वतन्त्रता बाजार से खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है, यह तो कठोर साधना द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

१४९. अरे जिज्ञासुओ ! तुम निराश क्यों होते हो, अपनी आंखों के बन्धन को उतार डालो, और देखो, अज्ञान के आवरण को उठाओ, और स्पष्टतः देखो कि आनन्द तुम्हारे भीतर डेरा डाले बैठा है। अविद्यारूपी व्याधि ने तुम्हारी दृष्टि विकृत करदी है। इस चक्षु व्याधि को दूर करो, प्रतिदिन ध्यान के द्वारा अपने नेत्रों में नूतन चश्मे लगाओ।

१५०. दूसरों को सलाह देना सब से सुगम है और उसके अनुसार अपना जीवन बनाना सबसे कठिन है।

* भय के विषय में *

१५१. भय बहुत ही विनाशकारी है। यह बहुत ही ध्वंसकारी रूप में प्रकट होता है। यह शरीर मन तथा आत्मा के लिये विष के समान है। भय प्रत्येक कष्ट के मूल का सिंचन करता है। अल्प निमित्त

को पाकर ही वह मानसिक संतुलन तथा शारीरिक स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है। यह कई रूपों को धारण करता है जैसे रोगों का भय, धन सम्पत्ति के नष्ट होने का भय इत्यादि। मन की कल्पना भय को और घनीभूत बना देती है। भय अनेक जीवनों को बरबाद कर डालता है। मनुष्य को दुःखी तथा असफल बनाता है। भय की भावना को छोड़ो, निश्चय करो कि तुम अमर अभय आत्मा हो।

१५२. अज्ञान के कारण ही भय की उत्पत्ति होती है। भय किस हद तक मनुष्य का विनाश कर सकता है यह निम्न अंकित घटना से चरितार्थ हो जायेगा।

१५३. एक समय कोई किसान अपना शान्त तथा सन्तोष-मय जीवन व्यतीत कर रहा था। उसके पास थोड़ी सी भूमि थी जिसमें वह मौसम आने पर खूब परिश्रम करता था। उपज अच्छी होती थी और वह हर बार अच्छी फसल काटता था। उसकी स्त्री भी बहुत कर्त्तव्य परायणा थी। वह भोजन बनाती, गृह सम्भालती और साथ ही खेत के काम में पति को सहायता भी दिया करती थी। एक बार जब किसान खेत काट रहा था उसकी एक उंगली किसी कांटेदार पौधे द्वारा थोड़ी कट गई, और उससे कुछ खून भी बह चला। उसने कटे स्थान पर थोड़ी

गीली मिट्टी लगादी और पुनः अपने काम में लग गया। दिन भर काम करने के पश्चात् वह घर लौटा, उस छोटी घटना को तो वह बिल्कुल भूल गया था क्योंकि न तो उसमें कुछ पीड़ा थी और न रुधिर ही जारी था। अन्य दिनों की भांति दूसरे दिन भी वह प्रातः उठ खेत में काम करने के लिये गया, और उसने पहले दिन की उस छोटी घटना को पूर्णतः भूलकर दोपहर तक कठिन काम किया, उसकी स्त्री उसके लिये दोपहर की रोटी लाई। भोजन करके दोपहर के बाद वह भी पति के साथ काम करने लगी। दोनों पास-पास फसल काट रहे थे, इसी बीच उस स्त्री के द्वारा एक सर्प के भी दो टुकड़े हो गये। इसको देखते ही स्त्री भय से चिल्ला पड़ी और अपनी दरांती को भी उसने फेंक दिया। वह भय के वशीभूत हो गई और उसने कल्पना कर ली कि उस सर्प ने अवश्य ही मुझे डंक लगाया होगा, परन्तु वास्तव में वह सर्प तो दो टुकड़ों में बंट गया था। किसान उसकी सहायता के लिये दौड़ा। इस काल्पनिक आपत्ति से बचने के लिये वह जोरों से चिल्लाने लगा, और वह उसको सांत्वना देने में विफल रहा। उसकी स्त्री इतनी भय-भीत होगई कि उसके मुँह से झाग आने लगे।

उसका पति उसके निकट होने के कारण स्वयं भी भयभीत होने लगा। यही स्थल है जहां कल उसे घाव लगा था, उसने विचार किया कि अवश्य ही उसी सर्प ने मुझे भी डंक लगाया है इस विचार से उसका भय और भी बढ़ गया, यहां तक कि वह उस छोटे घाव में दर्द अनुभव करने लगा, और वह भी आफत का शिकार बन बैठा। फलस्वरूप नाड़ी जोर से चलने लगी। सर्प दंश की आपत्ति के विचार से दोनों पूर्णतः शोकाक्रान्त हो गये और अन्ततः भयरूपी राक्षस ने अपना अन्तिम काम कर ही दिखाया। दोनों ही भय के वशीभूत हो इस संसार से चल बसे। शीघ्र ही दुर्घटना का संवाद सारे ग्राम में फैल गया। सभी उस स्थल की ओर दौड़े जिस जगह किसान तथा उसकी स्त्री मृत पड़ी हुई थी। कुछ हू हल्ला के बाद लोगों ने उन शरीरों के दाह संस्कार का प्रबन्ध किया। इस आपत्ति सम्बन्धी बातों तथा विचारों में वे इतने खो गये थे कि किसी ने भी मृत सर्प को देखने का विचार नहीं किया। उस भीड़ में एक युवक को सर्प को देखने का कौतु-हल हुआ। वहां निकट ही उसने देखा कि वह सर्प दो टुकड़ों में पड़ा है। वह उसके अति निकट परीक्षार्थ गया तो देखा कि वह तो एक रस्सी का

टुकड़ा है काली मिट्टी में पुता हुआ। उसने शीघ्र ही सब लोगों को पुकारा, और उस सत्य को दिखाया। सब के सब आश्चर्यचकित हुए। परन्तु अब वे कर ही क्या सकते थे, वे दोनों तो समाप्त ही होगये थे। इस घटना से यह स्पष्ट है कि भय कितना विनाशकारी है और किस प्रकार नाना रूपों को धारण करता है और मनुष्य के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य को नष्ट कर मनुष्य को मृत्यु के घाट तक पहुँचा देता है। भय, कायरता, आशंका आदि पर्यायवाची हैं। साहस, विश्वास, दृढ़ता के द्वारा भय पर विजय प्राप्त करो, वीर बनो, तुम तो अजर अमर आत्मा हो, फिर भय किस बात का ?

१५४. यदि तू अपनी साधना में आगे नहीं बढ़ सका है, वासना के थपेड़े खाकर गिर पड़ा है तो निराश होकर बैठ जाने की आवश्यकता नहीं, तेरा काम है उठना। यदि कोई साईकिल से गिर पड़ा अथवा गड्ढे में गिर गया है उसका मतलब यह नहीं है कि वहीं गिरे रहो, वहीं पड़े रहो। उठो, उठना काम है। रोग बढ़ भी जाता है और कम भी हो जाता है। अपना कर्त्तव्य है कि चिकित्सा करायें। यदि तू इस हीन अवस्था में फंस गया है तो श्रुति पुकार

रही है कि उठो जागो और ज्ञानीजनों की शरण लो।
१५५. परमात्मा समीप अन्तरतम है, भूतमात्र के हृदय में है, सर्वव्यापी और सर्वसाक्षी है, जल में, स्थल में, काष्ट और पाषाण में सर्वत्र रम रहा है उससे कोई स्थान खाली नहीं। वह परमात्मा आनन्दरूप, सुगम्य, और सुसुख है तब यह जीव उसी पर क्यों नहीं टूट पड़ते। कौड़ी-कौड़ी के लिये जो लोग रात दिन मरा करते हैं वे इस परम सुख के पीछे क्यों नहीं पड़ते, उससे किनारा काट कर, संसार दुःख सागर है, भव नदी दुस्तर है इत्यादि रोना नित्य रोते हुए भी ये लोग संसार में ही क्यों अटके रहते हैं, अपना सहज सिद्ध अमरपद छोड़कर ये जन्म मृत्यु के चक्र में क्यों पड़े हुये हैं, उन्हें परमार्थ दुर्गम जान पड़ता है, परमानन्द को छोड़कर विषयों की नकली चमक पर क्यों लुभा रहे हैं। इसका उत्तर यही है कि उनका भाग्य ही ऐसा है जैसे चिचड़ी गाय के बाक में चिपटी रहती है वहीं दूध भी है और खून भी। पर वह दूध नहीं पीती, खून ही पीती है।
५६. सन्त महात्माओं को यही बड़ा आश्चर्य होता है। जीव को ऐसी दुःखी अवस्था में देखकर वे कहते हैं इस समझ को छोड़ो कि मैं शरीर हूँ, दुःखी हूँ और

यह निश्चय करो कि मैं अमर आत्मा हूँ, ईश्वर का पुत्र हूँ। तो तुम सचमुच ही सुखी हो जाओगे।

१५७. चाबी को बायें घुमा रहे हो, अब दायें घुमाओ, तो ताला खुल जायेगा। जिधर जा रहे हो, उधर पीठ फेर लो, आगे न देख पीछे देखो, बाहर की ओर दृष्टि लगाये हो अब अन्दर की ओर लगाओ, प्रवाह को छोड़ उद्गम की ओर मुड़ो तो तुम सचमुच सुखी हो जाओगे। यही मनुष्य का लक्ष्य है।

१५८. जीव अपने ही संकल्पों में वंधा है। मैं शरीर हूँ बन्धन में पड़ा हुआ हूँ, यही रोना रो रहे हो। इसी से जन्म मरण के चक्र में पड़े हो। पर-पैरों को छुड़ा कर नलिका यंत्र से उड़ जाने वाले तोते की भांति यदि जीव अहम् और मम इन दो संकल्पों को छोड़ दे, तो फिर शीघ्र बन्धन से छुटकारा हो जावेगा।

१५९. मन जैसा संकल्प करता है वैसा ही चित्र उस पर खिंच जाता है। जीव अपने संकल्प से ही बंधा है और अपने पुरुषार्थ से ही छूट सकता है।

१६०. आत्म कल्याण का साधन स्वयं ही करना पड़ता है। इसके लिये सदा चौकन्ना होकर सावधान रहना चाहिये। मन सरपट भागने वाला घोड़ा है। वैराग्य के लगाम से उसकी चाल क़ाबू में करके उसे वश

करना होगा। मनोनिग्रह के बिना साधन पूरा फल नहीं देते। मन बड़ा बली है, दुर्जय है, बड़े बड़े बुद्धिमानों को इसने चौपट किया। इसलिये विषयों की ओर सतत् दौड़ने वाले इस मनो व्याघ्र को शासन में लाकर जो इसे पीछे खींचेगा, वही साधक चतुर और शूरवीर है।

१६१. मन की बड़ी रखवाली करनी पड़ती है। मदोन्मत्त हाथी जैसे अंकुश के बिना नहीं मानता, वैसे ही यह चंचल मन पूरी सावधानी के बिना ठिकाने नहीं रहता।

१६२. फूटे घड़े में जल ठहरता नहीं, सारा निकल जाता है। कच्चे घड़े में जल भर देने से कुछ देर जल ठहर तो जाता है किन्तु कुछ ही देर में घड़ा भी फूट जाता है और जल भी बह जाता है। अतः चतुर पुरुष पात्र की परीक्षा करके उसे भली प्रकार ठोक बजा लेते हैं तब पानी भरते हैं और जैसे खूँटे को गाड़कर उसे बार बार हिला हिलाकर देख लेते हैं दृढ़ता से गड़ा या नहीं, हिलता तो नहीं है। जब उसे अच्छी तरह दृढ़ समझ लेते हैं तब उसमें पशु को बांधकर वश में करते हैं। इसी प्रकार प्राचीन काल में सद्‌गुरु शिक्षा देने से पूर्व शिष्य की भांति भांति परीक्षा करते थे, संसार के पदार्थों की बड़ाई करके,

उसे प्रलोभन देकर उसके हृदय को टटोलते थे, इसमें कहीं इनके लिये छिद्र तो नहीं है। प्रेमपूर्वक उसे ठोक बजाकर हिला हिलाकर सब प्रकार देख लेते थे कि इसमें कचाई तो नहीं है (जैसे यमराज ने नचिकेता की परीक्षा की थी)। अधिकारी समझ लेने पर ही उपदेश देते थे, तभी शीघ्र सफलता होती थी। जिज्ञासु उपदेश से पूरा लाभ उठा कृत्कृत्य हो जाता था।

१६३. हम दिन में रात्रि में कितने मनोरथ करते हैं, कितने बालू के किले बनाते हैं वह क्षण भर में ढह जाते हैं। जो विश्व की रचना करके अणु-प्रमाणु में प्रवेश कर रहा है, जिसने बनाने का, पालन करने का और फिर संहार करने का स्वयं ही अपने नाम पट्टा लिखा रक्खा है फिर हम उसके कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं, दुःखी होते हैं कि हमारी इच्छा के विरुद्ध यह कार्य क्यों हुआ, यह तो अनाधिकार चेष्टा है। जो हो रहा है उसे होने दो, तुम तो सूत्रधार की ओर दृष्टि रक्खो। अपनी परवशता और प्रभु की स्वतन्त्रता का अनुभव करो। अपनी इच्छा को उसकी इच्छा में मिला दो, अपना स्वर पृथक् अलापने से वह बेसुरा राग हो जायगा।

१६४. जिन्होंने जीते रहते ही मरना सीख लिया है ऐसे

लोग कभी मरते ही नहीं। वे अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं।

१६५. शुभ कार्य के लिये जो कमर कसकर निकल पड़ते हैं उनका सर्वत्र कल्याण ही कल्याण है।

१६६. मनुष्य अपनी निर्बलता के कारण ही भयभीत रहता है, जहां वह प्रभु के सहारे शुभ कार्य का आरम्भ कर देता है वहां प्रभु उसके मार्ग को मंगलमय बना देते हैं।

१६७. यह जीव प्रारब्धवश नाना योनियों में घूमता भटकता मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। इस मोक्ष द्वार रूप देह को पाकर भी जो संसार में ही आसक्त रहते हैं वे मानो ठगे गये। राजा के द्वार पर आकर भी खाली लौट गये, हीरे के बदले चमकता हुआ काँच लेकर प्रसन्न होगये।

१६८. जीव का परम कर्त्तव्य है प्रभु को प्राप्त करना, संसार में फंसकर जीव अपने प्रधान कर्त्तव्य को भूल जाता है और जीवन को व्यर्थ खो देता है अपने को अधोगति के गड्ढे में गिरा लेता है।

१६९. सत्संग ऐसी खटाई है जिससे अन्तःकरणरूपी धातु के ऊपर लगा मल दूर हो जाता है और वह शुद्ध हो जाता है।

१७०. प्रभु की कृपा प्राणीमात्र पर सर्वदा हो रही है,

किन्तु अज्ञानी जीव इसका अनुभव नहीं करते, अपवित्र अन्तःकरण वाले उसका मर्म नहीं समझ पाते।

१७१. प्रभु के सभी विधानों में उनकी अनुकम्पा निहित है। जीव का सबसे बड़ा पुरुषार्थ यही है कि प्रभु जो करें उसी में सन्तुष्ट रहे, उनकी हां में हां मिलाता रहे। उनके किसी भी विधान को विघ्न न समझे, संयोग वियोग, सुख दुःख सभी में सम रहकर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करे, यही भक्त का लक्षण है।

१७२. जीवनपर्यन्त मन का विश्वास न करो, सदा इस पर अँकुश रक्खो, जहां इसकी रस्सी ढीली की, वहीं यह उछल कूद मचाने लगता है।

१७३. जीवों की सदा एक सी स्थिति नहीं रहती, या तो उन्नति की ओर अग्रसर होता है अथवा गिरता है तो फिर पतन की ओर ही बढ़ता है। नियमों का कड़ाई के साथ पालन किया जाय, तब तो उन्नति होती है, जहां नियमों में तनिक भी ढिलाई की फिर नियम सधते नहीं।

१७४. मन को तो संसार में बहने का कुछ बहाना चाहिये, जो इसका जन्म जन्मान्तरों का स्वभाव है उसे सिखाने की आवश्यकता नहीं। कल्याण मार्ग पर

इसे बल पूर्वक यत्न से कठिनता के साथ लगाना पड़ता है। जैसे पृथ्वी पर नीचे की ओर जल स्वयम् बहने लगता है, ऊँची भूमि में यत्न पूर्वक युक्तियों से चढ़ाया जाता है। जहां तनिक भी ढिलाई हुई कि फिर नीचे की ओर बहने लगेगा, इसी प्रकार मनुष्य ने एक बार नियम छोड़ा तो गिरता ही जाता है। इस विषय में बहुत सावधानी की जरूरत है नहीं तो वर्षों की मेहनत तनिक सी देर में बरबाद हो जाती है।

१७५. कष्ट आ पड़ने पर उसे कष्ट न मानना, मृत्यु की तनिक चिन्ता न करना, यही ज्ञानी का लक्षण है। वाचिक ज्ञान तो बहुतों को होता है किन्तु जो अवसर पर काम न आवे, हृदय को स्पर्श न करे, तो ऐसा ज्ञान केवल वागविलास और व्यसन है।

१७६. मन से दृश्य की आसक्ति हट जाय, अनुकूल प्रतिकूल बातों, घटनाओं का हृदय पर कुछ प्रभाव न पड़े, सदा सब वस्तुओं, अवस्थाओं में प्रभु की इच्छा का अवलोकन करता रहे, यही ज्ञानी तथा भक्त का लक्षण है।

१७७. जब मनुष्य कहीं की यात्रा करते हैं तो पहले वहां के विषय में सोचते विचारते हैं। अन्य लोगों से परिचय प्राप्त करते हैं। नकशा आदि देखते तथा

यात्रा वृतान्त पढ़ लेते हैं, किन्तु यह अज्ञानी जीव इस जगत् पथ में इस प्रकार आंखें मूँदकर अन्धे के समान चल रहा है कि इसे गन्तव्य स्थान का पता ही नहीं, यह जानता ही नहीं कि मुझे कहां जाना है, मैं ठीक मार्ग से चल रहा हूँ अथवा भूल कर व्यर्थ भटक रहा हूँ। बिना सोचे विचारे चलता ही जाता है और अज्ञान के कारण नाना प्रकार दुःखों को उठाता है।

१७८. इस शरीर का ढांचा ऐसा बना है कि जिस स्थिति में रहता है वैसे ही रहने का इसे अभ्यास हो जाता है। किसी राजा ने मार्ग में एक व्यक्ति को देखा कि धूप में कंकड़ों पर गहरी निद्रा में सो रहा है। राजा को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने अपने मन्त्री से पूछा—"इस व्यक्ति को ऐसी गरमी में कंकड़ों पर गहरी नींद कैसे आ गई ? क्या इसके पास कोई जादू है, हमें तो नरम गुदगुदे बिछोनों पर प्रयत्न करने पर भी ऐसी नींद नहीं आती।" मन्त्री ने सरलता से कहा—"प्रभु! यह तो अभ्यास और स्थिति के ऊपर निर्भर है। यदि इसे भी सुख आराम में रक्खा जाय तो इसे भी फिर यहाँ नींद नहीं आयेगी।" राजा ने कहा—"इसका हमें प्रत्यक्ष कराओ।" राजा की आज्ञा पालन करने के लिये उस

व्यक्ति को बड़े आदर सत्कार के साथ राजधानी में ले गये, कोई साधारण सा काम उसे सौंप दिया, और जितना सुख आराम बड़े बड़े अधिकारियों को दिया जाता है उतना इसे भी दिया जाने लगा। गुदगुदे बिछौनों पर सोना, स्वादिष्ट भोजन करना, सुन्दर सवारियों पर घूमना। एक दिन मन्त्री ने उसकी रज़ाई की रूई में जान बूझकर २-४ बिनौले रहने दिये, बिछौने में भी दो चार छोड़ दिये। जब वह रात्रि को लेटा तो वे बिनौले शरीर में चुभने लगे, उसे उस रात राजा के समीप ही लिटाया गया। संकोच वश वह व्यक्ति कुछ बोला तो नहीं किन्तु रात्रिभर जागता और करवट बदलता रहा। प्रातः मन्त्री ने बड़े सम्मान से पूछा—"आपकी आँखें लाल क्यों हैं, मुख भी म्लान हो रहा है क्या कारण है?" उसने दुःखित होकर कहा—"क्या बताऊं मन्त्री जी! आज नई रज़ाई और नया बिछौना था, न जाने उसमें क्या वस्तु थी जो सारी रात मेरे अंगों में चुभती रही, क्षणभर को भी निद्रा नहीं आई।" तब मन्त्री ने राजा से कहा, "देखिये महाराज! कहां तो इसे कंकड़ों पर धूप में गहरी नींद आती थी, कहां अब दो चार बिनौलों के कारण ही इसे नींद नहीं आई। यह प्राणी सुविधाओं और परिस्थितियों

का दास है जैसी स्थिति में रहने लगता है वैसा ही इसे अभ्यास हो जाता है।"

१७६. पैरों में निःस्पृहता की बेड़ी लगाकर इस मन का दृढ़ता से निरोध करो, और अपने आप को जानो कि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप क्या है, क्योंकि आत्म ज्ञान के बिना ही महान् दुःखों के समुद्र में तुम पड़े हो।

१८०. विषयों की पिशाची आशा ने चक्रवर्ती पद से गिरा कर तुम्हें कंगला कर दिया है। मदोन्मत्त सिंह सदृश बलवान् होते हुए भी इसी दुराशा से तुम एक कच्चे धागे के द्वारा बांधकर बिठा दिये गये हो।

१८१. आश्चर्य और महान् आश्चर्य, कि यह संसारी मूढ़ जन दुःखरूप संसार में सुखबुद्धि करके शोक के मारे भटकता फिर रहा है।

१८२. परमार्थ पथ में पर-दोष दर्शन से बढ़कर कोई पाप नहीं है। जिस दोष का हम चिन्तन करेंगे, वाणी से उसे कहेंगे, उसके संस्कार हमारे जीवन में अवश्य पड़ेंगे, बिना पड़े रहेंगे नहीं।

१८३. हम मौन रहकर भी निन्दा से नहीं बच सकते, इस से बचने का उपाय यही है कि हम बाहर की ओर न देखकर अन्दर की ओर देखें, दूसरों के दोष न खोजकर अपने ही दोष खोजें, तो हम परमार्थ की

और अधिक बढ़ सकते हैं ।

१८४. मन स्थिर होने से ही ईश्वर का दर्शन होता है। हृदय सरोवर में जब तक कामना की वायु बहती रहेगी, तब तक ईश्वर दर्शन असम्भव है ।

१८५. जब भगवान् के आश्रित हो रहे हो, तब यह न हुआ, वह न हुआ आदि चिन्ताओं में मत पड़ो ।

१८६. आत्म विश्वास, आत्म निरीक्षण, आत्म संयम, पुरुषार्थ और प्रभु कृपा का भरोसा, ये मनुष्य का बेड़ा पार लगाते हैं ।

१८७. बिना साधन किये सिद्धि कहां और कैसे मिले। तैरने के विषय की सैकड़ों पुस्तकें पढ़ लेने पर भी जब तक पानी में घुसा न जाय, अभ्यास न किया जाय, तैरना नहीं आता । कोरा किताबी ज्ञान अनुपयोगी है । भोग अथवा दान में काम में न आने वाला केवल जमीन में गड़ा हुआ धन व्यर्थ होता है।

१८८. दूसरे के अशिष्ट व्यवहार पर सत्संगी, विचारशील को उद्वेग में न आ जाना चाहिये, घूंसे के बदले में घूंसा लगाने का प्रयत्न त्याज्य है ।

१८९. महात्मा सुकरात की पत्नी बड़ी कर्कशा थी, हर समय उनको बड़े कटु शब्द सुनाने में लगी रहती थी । परन्तु सुकरात तो बड़े ज्ञानी बुद्धिमान् महात्मा थे, अधिकतर तो वे मौनी बने रहते थे । यदि कभी

उत्तर दिया भी तो वह शान्तमय होता था। एक दिन पत्नी भभकती चली गई पर वे मौनी बने रहे। इस पर पत्नी का क्रोध इतना बढ़ गया कि वह एक वर्तन में गन्दा पानी भरकर लाई, और उनके ऊपर डाल दिया। सुकरात इस पर मुस्कराते हुए बोले कि मैं तो अब तक इस धारणा में था कि जो गरजते हैं वे कभी बरसते नहीं, परन्तु आज तुमने मेरी इस धारणा को असत्य प्रमाणित कर दिखाया, धन्यवाद! इन शब्दों को सुनकर, जिन में शान्त भाव, अद्वेष और सत्यता का पूर्ण मिश्रण था पत्नी के हृदय में एकाएक जगृति उत्पन्न होगई और वह सुकरात जी के चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करने लगी। इस ही विधि से धीरे धीरे उसका उद्धार होता चला गया और अन्त में वह एक आदर्श पत्नी बन गई।

१६०. अरे प्राणी! अब भी जाग जा, प्रभु का स्मरण कर, यही साथ जायगा और कुछ नहीं। अरे मूर्ख! तूने क्रोध नहीं छोड़ा, झूठ नहीं छोड़ा, सत्य का त्याग क्यों कर दिया। जिसके स्मरण से सब कुछ मिलता है, जिसकी शरण में सब सुखों का निवास है उसे क्यों छोड़ बैठा है?

१६१. असंख्य जन्म धारण कर यह मानव भोगों से तृप्त नहीं हुआ है इस थोड़े से शेष जीवन में क्या आशा

हो सकती है, फिर भी यह मूढ़ मानव पुनः-पुनः भोगों की प्राप्ति के लिए रात दिन भटकता रहता है, दिन में चैन नहीं, रात्रि को नींद नहीं। हे चित्त ! इन क्लेशदायी विषय तृष्णा से तू अब उपराम हो जा, कल्याण मार्ग का साधन आरम्भ कर, शांत भाव से प्रभु चिन्तन में लग जा, जल तरंग के समान चँचल गति को छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो।

१६२. जैसे कि बालू से तेल नहीं निकलता, हथेलीप र केश नहीं उपजते, इसी प्रकार मोह ग्रस्त, तृष्णारूपी कीचड़ में फँसे मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिये वैराग्य अति आवश्यक है।

१६३. पथ भ्रष्ट हुए लोग ही स्तुति और निन्दा किया करते हैं। इससे तुम्हारा कोई लाभ नहीं हो सकता है। तुम तो केवल अपने मुक्तिरूपी कार्य को सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करो।

१६४. प्रारब्ध वश आने वाले सुख दुःख का स्वागत करे, जाने वाले को रोके नहीं, जो जैसे प्राप्त हो उसे वैसे ही सहन करे, बस यही उत्तम तप है।

१६५. पर-निन्दा से दूर रहे, स्वाद और वाद विवाद इन दोनों से बचता रहे, जल्दबाज न हो, सदा प्रसन्न रहे, मन में उदासी कभी न आने दे, कठोर वचन

किसी से न कहे, पर-दोष दर्शन और पर-निन्दा ये प्रभु प्राप्ति में महान् विघ्न हैं।

१९६. अभिमान न करना, किसी से घृणा न करना, कम बोलना, मीठा बोलना, आवश्यक बोलना, विवाह उत्सव आदि जन समूह में कम शामिल होना, ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखना ये साधक के आवश्यक गुण हैं।

१९७. सहनशीलता का अभ्यास करना, समय को व्यर्थ न गंवाना, निरन्तर प्रभु भजन करना चाहिये।

१९८. विश्वास करो मंगलमय भगवान् तुम्हारे साथ निरन्तर रहते हैं। दुःखी क्यों होते हो, दुःखी होना अपने को अविश्वास की अवस्था में फेंकना है।

१९९. सारी परिस्थितियों के रचयिता ईश्वर हैं। जिस प्रभु ने तुम्हें उत्पन्न किया है वह सदा तुम्हारी देख भाल कर रहा है, तुम तो बस अनन्य भाव से उसकी शरण लो और प्रेमपूर्वक उसका भजन ध्यान करो।

२००. सर्वतो भावेन अपने को उसके ऊपर छोड़ देने की आवश्यकता है। अपनी सारी अहमता और ममता ही बन्धन है, बन्धन में क्यों पड़े हो, इस महा दुःख-दायी बन्धन को अपना महान् शत्रु समझ कर इससे छूटने का उपाय करो।

२०१. एक ओर प्रभु है, दूसरी ओर संसार है। हमें एक

से प्रेम करना है तो दूसरी जगह छोड़ना होगा।

२०२. ज्ञानी और भक्तों को त्रिकाल में दुःख नहीं होता, और संसारी जनों का दुःख त्रिकाल में भी नहीं छूटता।

२०३. चालाकी और तर्क से प्रभु दूर रहते हैं।

२०४. जो सच्चे मन से उस प्रभु को चाहेगा, उसे वे अवश्य मिलेंगे, नकल से वे बहुत अप्रसन्न होते हैं।

२०५. विश्वास रखना चाहिये कि प्रभु हमारी रक्षा करेंगे ही।

२०६. जीव की ओर से चिन्तन कर्त्तव्य है, प्रभु की ओर से कृपा होगी ही। जितना जितना चिन्तन बढ़ेगा, उतना उतना ही आनन्द बढ़ेगा।

२०७. ध्यान के बिना चित्त शांत नहीं होता, मनोराज्य विचार से नहीं हट सकता, वह तो ध्यान से ही शान्त होगा।

२०८. इस मार्ग में सब से बड़ा विघ्न है अपने साधन का अभिमान, अभिमान वश मनुष्य दूसरों का अपमान कर बैठता है। अपने से दूसरों को छोटा समझता है, यही सब से बड़ा अपराध है। इससे हमारा किया कराया सब नष्ट हो जाता है।

२०९. भक्त को सहनशील होना चाहिये, लोग उसे बुरा कहेंगे, उसकी हँसी उड़ायेंगे, उस पर नाना प्रकार के कटाक्ष करेंगे, यदि उसने अपना मार्ग छोड़कर

उनसे लड़ना झगड़ना शुरु कर दिया तो उनकी जीत और अपनी हार होगी। बिना इस गुण के आये आध्यात्मिक उन्नति का केवल स्वप्न देखना मात्र हो सकता है, हाथ कुछ भी नहीं आता।

२१०. प्रभु में अटूट श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये, जितना हो सके अधिक से अधिक प्रेम पूर्वक उनका भजन ध्यान करना चाहिये, वे अवश्य कृपा करेंगे।

२११. जो दूसरों को दुःख देता है, जिसे इन्द्रिय-तृप्ति में आनन्द है तथा कटु भाषण जिसका स्वभाव है, जिसको दूसरे के दोष देखने में आनन्द आता है, पर-दोष सुनने से जिसको प्रसन्नता होती है तथा जिसे पर-दोष बखान का अभ्यास है वह प्रभु भक्ति से रहित है।

२१२. चित्त की शुद्धि के लिये भजन ध्यान के साथ-साथ इस बात की भी बहुत आवश्यकता है कि हम दूसरों के दोष न देखकर निरन्तर अपने चित्त की परीक्षा करते रहें।

२१३. जिस समय चित्त में राग द्वेष का अभाव हो जाय, और चित्त किसी भी दृश्य पदार्थ में आसक्त न हो, उस समय समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हुआ है।

२१४. प्रभु नाम के जप से वाणी शुद्ध होती है। दान से धन शुद्ध होता है। और ध्यान से अन्तःकरण शुद्ध

होता है।

२१५. अनावश्यक कर्म का त्याग करना चाहिये तथा प्रभु सदा मेरे समीप हैं ऐसा निश्चय रखना चाहिये। जीवन में सरलता होनी चाहिये।

२१६. सरलता भक्ति मार्ग का सोपान है, तथा सन्देह और बनावट अवनति का चिन्ह है।

२१७. प्रभु चिन्तन में समय व्यतीत करना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। भक्त को प्रभु की सम्पत्ति का अपव्यय करना महापाप है।

२१८. अनेक विघ्न उपस्थित होने पर भी जो धीर अपने कल्याण मार्ग से चलायमान नहीं होता, वही प्रभु का कृपापात्र है।

२१९. नित्य निरन्तर प्रेमपूर्वक प्रभु की उपासना करना, प्रभु को ही सब से बढ़कर अपना रक्षक समझना, उस पर पूर्ण विश्वास रखना, सर्वदा उसके अनुकूल कार्य करना, सब कुछ प्रभु को समझना, प्रभु के प्रत्येक विधान में प्रसन्न रहना, प्रभु को ही अपना परम स्नेही, माता पिता, बन्धु सुहृद, सखा आदि मानना। प्रभु के प्रतिकूल कोई भी कार्य न करना और जो कल्याण मार्ग में प्रतिकूल वस्तु हो, उससे उदासीन रहना, चाहे वह सांसारिक दृष्टि से कितनी

ही उच्च अथवा प्रियतर हो। इन साधनों से मनुष्य प्रभु की कृपा का पात्र बनता है।

२२०. विश्वास और श्रद्धा ही प्रभु प्राप्ति के मार्ग में प्रधान संबल हैं। इस पाथेय को साथ लिये बिना मनुष्य परमार्थ के मार्ग पर दो चार कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

२२१. विश्वास ही सारे साधनों की जड़ है। लौकिक कार्यों में भी श्रद्धा विश्वास बिना कार्य सिद्ध नहीं होता, सिद्ध होना तो दूर रहा, उसके करने में उत्साह ही नहीं होता, मन नहीं लगता। तब मानवी दृष्टि से सर्वथा अदृष्ट परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग पर प्रगति, बिना श्रद्धा विश्वास के कैसे हो सकती है।

२२२. परमात्मा के मिलने में देर नहीं है, जो कुछ देर है सो हमारे विश्वास करके साधन करने में ही है।

२२३. जो प्रभु का भक्त है उसे प्रभु के अनुकूल कार्य करना अनिवार्य है। भक्त को हर समय इस बात की सावधानी रखनी पड़ती है कि, मुझ से कोई चेष्टा प्रभु की रुचि के प्रतिकूल न हो जाय। जिस बात में प्रभु प्रसन्न होते हैं उसी बात में वह भी प्रसन्न रहता है। जगत् के सुख दुःख हानि लाभ की कुछ चिन्ता न कर वह प्रा[illegible]नण प्रभु की

आज्ञाओं का पालन करता है। बड़ी से बड़ी कठिनाई में भी भक्त अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। इस प्रकार जो प्रभु के नियमों पर चलता है, निरन्तर उसके भजन ध्यान में लगा रहता है, उसी को प्रभु अपना परम प्यारा समझते हैं।

२२४. शरणागत भक्त भगवान् से कभी कुछ नहीं मांगते, क्योंकि वे इस बात को जानते हैं कि भगवान् सर्वज्ञ हैं तथा हमारे परम हितैषी हैं, हमारा यथार्थ हित कौनसी बात में है इसको वे भली भांति जानते हैं। हम अदूरदर्शी हैं, निर्बोध बालक के सर्प मांगने की भांति हम अज्ञानवश परिणाम में महान् दुःख-दायिनी आपातरमणीय वस्तुओं को मांग सकते हैं परन्तु प्रभु हमारा सच्चा हित देखकर हमारे लिये जो वस्तु उपयोगी होगी, वह आप ही देंगे। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। प्रभु से मांगना तो अपने को ठगाना है, क्योंकि हम अपने हित की उतनी दूर तक कल्पना ही नहीं कर सकते, जितनी दूर तक का हमारा हित भगवान् समझते हैं। इसीलिये भक्तजन कुछ नहीं मांगते, यदि कभी मांगते हैं तो यह कि हे प्रभु! मेरे हृदय में कभी कुछ मांगने का अंकुर ही पैदा न हो, मैं यही मांगता हूँ।

२२५. ऐसे शरणागत भक्त भगवान् के प्रत्येक मंगलमय

विधान में सतत सन्तुष्ट रहते हैं। उनका यह दृढ़ निश्चय होता है कि प्रभु कभी अमंगल विधान कर ही नहीं सकते।

२२६. सद्वैद्य की कड़वी दवा अथवा डाक्टर द्वारा चीर फाड़ की भांति उनका कठोर कार्य भी जीव के कल्याणार्थ हुआ करता है। वैद्य अथवा डाक्टर तो हितैषी होते हुए भी अल्पज्ञ होते हैं, इस कारण भूल कर सकते हैं परन्तु सर्वज्ञ परमात्मा से कभी भूल नहीं होती।

२२७. सत्संग की शास्त्रों तथा अनुभवी पुरुषों ने बड़ी महिमा बताई है। यथार्थ में है भी यह सच्ची बात। सत्संग के बिना कुछ बोध नहीं होता, बोध हुए बिना साधन नहीं होता, साधन के बिना जीव का उद्धार कैसे हो सकता है? परमार्थ के साधन में श्रद्धा के बाद दूसरा नम्बर सत्संग का ही है परन्तु सच्ची श्रद्धा भी सत्संग से ही प्राप्त होती है।

२२८. सत्संग में दो बातें विशेष ध्यान देने की हैं— (१) जिनका सत्संग किया जाय वे सच्चे सन्त पुरुष हों, वे स्वार्थ भावना से रहित हों। (२) आचरण में लाने के लिये, तत्त्व जानने की सच्ची जिज्ञासा के साथ सरल भाव से श्रद्धा पूर्वक उनका संग किया

जाय । इन दोनों में से किसी एक का अभाव होने से शीघ्र तथा यथार्थ लाभ नहीं होता ।

२२६. शीघ्र सच्चा लाभ उन्हीं को होता है जो निष्कपट हृदय से, लाभ की इच्छा से सत्संग करते और तदनुकूल आचरण करते हैं ।

२३०. जैसे वर्षा का जल यथा स्थान ग्रहण करने के लिये किसान खेत को भली भांति तय्यार करता है, वैसे ही जिज्ञासु जन हृदयरूपी खेत को शास्त्र और सन्तवचन रूपी अमृतधारा के ग्रहण करने के लिये शुद्ध करके तय्यार रखते हैं ।

२३१. ग्राहक भाव शून्य, विकारी और विश्वास रहित हृदय में उपदेश का प्रभाव सहज में नहीं होता ।

२३२. परीक्षा के लिये, कौतुहल निवृत्ति के लिये अथवा मनोरंजन के लिये जो लोग सत्संग करते हैं उन्हें बहुत ही कम लाभ होता है ।

२३३. जीव का भूतकाल कैसा ही रहा हो, यदि उसका वर्तमान सुधर जाय, वह दृढ़ निश्चय करले कि आगे का समय केवल प्रभु भक्ति में ही बीतेगा, तो वे अशरण शरण प्रभु स्वतः ही अपना अभय वरद हस्त फैलाकर उसे उठा लेते हैं और अपनी स्नेह-मयी गोद में बिठा लेते हैं । यदि वे ऐसा न करें तो किसी भी जीव का उद्धार कभी न होता ।

२३४. वास्तव में मनुष्य जीवन का उद्देश्य प्रभु को प्राप्त करना ही है, परन्तु यह तभी पूरा हो सकता है जब जीव परमात्मा को अपना एकमात्र आश्रय बनाकर सब प्रकार से आत्मसमर्पण कर दे !

२३५. जो लोग ऐसा मानते हैं कि हमारे भाग्य में प्रभु दर्शन लिखे ही नहीं, हमारे अच्छे संस्कार ही नहीं, वे वास्तव में बड़ी भूल करते हैं। प्रभु का द्वार सब के लिये सदा खुला रहता है। वह कभी बन्द होगा ही नहीं, चाहे कोई किसी समय परमात्मा का द्वार खटखटाये वे तत्काल उसकी पुकार सुनकर उसे अपने हृदय से लगाने को तय्यार मिलेंगे। बच्चा जब कभी भी रोकर मां को पुकारता है तो माँ समय असमय का विचार न करके झट अपनी स्नेहमयी गोद में उठाकर उसे स्तनपान कराने लगती है। पुकार सुनने पर न तो वह बच्चे का पुण्य पाप देखती है और न क्षण भर रुकती है, उस समय वह स्नेहभरी जननी केवल दोनों हाथ बढ़ाकर बच्चे को उठाना और पुचकारना ही जानती है। फिर भला भगवान् तो सारी माताओं की माता और स्नेह के सागर हैं।

२३६. माँ तो किसी समय शायद दूर होने के कारण पुकार न भी सुने, अथवा किसी दूसरे कार्य में लगी हो

तो उसे पूरा करके आवे। पर भगवान् में यह दोनों बातें नहीं, वे कहीं दूर नहीं, सर्व व्यापक हैं सदा सर्वत्र मौजूद हैं, वे सर्व शक्तिमान् हैं। एक ही समय में वे असंख्य काम कर सकते हैं। अतः कोई उन्हें सच्चे हृदय से पुकारे, वे अवश्य सुनते है, उन्हें पुकारने में ही कमी है। जीव की ओर से ही यह देरी हो रही है।

२३७. पुकार सच्ची होनी चाहिये, वे पुकारने वाले की चाह की परख करते हैं। ऊपर की दिखाऊ पुकार उनकी स्नेह धारा को उमड़ाने में समर्थ नहीं होती। वे हमारे अन्दर की बात जानते हैं हमारे भीतर का कोई भी भाव उनसे छिपा नहीं है। ऊपर की पुकार होगी तो वह समझ लेंगे कि यह कोरी ठगई है मन में चाह नहीं है।

२३८. कोई ऐसा हो, जिसके मन में पुकार मची हो, सच्ची तड़प हो, परन्तु किसी कारण वश बाहर से न पुकार सके, तो वे उसकी अन्दर की पुकार ही सुन लेते हैं। उनको हृदय की पवित्रता की आवश्यकता है, बाहरी शब्दों की नहीं।

२३९. हमारी वृत्तियां बहिर्मुखी रहती हैं, जहां-जहां हमें इन्द्रियों को तृप्त करने वाले पदार्थ दीख सुन पड़ते हैं वहां-वहां ही हमारा चित्त जाता है, हम

उन्हीं में सुख खोजते हैं। परन्तु यह नहीं जानते कि दिन के साथ रात की भांति इस सुख का साथी दुःख सदा इसके साथ रहता है। हम सुख चाहते हैं इसीलिये हमें दुःख भोगना पड़ता है। यदि हमें वास्तव में दुःख से बचना है तो सुख की स्पृहा भी छोड़ देनी पड़ेगी।

२४०. हम उस परम सुख को तो चाहते नहीं जो सदा रहता है, जो कभी घटता बढ़ता नहीं, जो असीम और अनन्त है। हम तो चाहते हैं क्षणिक-इन्द्रिय सुख को जो वास्तव में सुख है ही नहीं, भ्रम से भासता है और बिजली की तरह एक बार चमक कर तुरन्त ही नष्ट हो जाता है। परन्तु हम अबोध इस बात को जानते नहीं; इसी से इसके पीछे पड़े रहते हैं और एक दुःख के गड्ढे से निकल कर तुरन्त ही दूसरा गड्ढा खोदने लगते हैं।

२४१. सबसे बढ़कर त्याग करने योग्य कीर्ति की इच्छा है। किसी भी प्रकार से हमारी कीर्ति हो, लोग हमें बड़ा समझें। जब तक इसका त्याग नहीं होता, तब तक बड़े से बड़े पुण्य कर्म, साधन और जप तप आदि इसके प्रवाह में सहज ही बह जाते हैं। मनुष्य अपने जीवन का किया कराया सब कुछ इस कीर्ति पिशाचनी के चक्र में पड़कर नष्ट करता रहता है। आगे चलकर

ऐसा कीर्ति चाहने वाला पुरुष दम्भाचरण का आश्रय लेकर कल्याण मार्ग से पतित हो जाता है।

२४२. वास्तव में हम लोग किसी दूसरे के दास नहीं हैं। शरीर परतन्त्र होने पर भी यदि हमारा मन और इन्द्रियां हमारे अधीन हैं तो हम स्वाधीन हैं स्वतन्त्र हैं। परन्तु मन इन्द्रियों की गुलामी तो ऐसी बुरी है कि इसके रहते शारीरिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने पर भी मनुष्य कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। अतएव आत्मा की अपार शक्ति को समझ कर बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके सच्ची स्वाधीनता, सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिये।

२४३. एक युग था जिसमें चार बातें आर्य-संस्कृति में छोटे बड़े सबके स्वभावगत सी हो गई थीं। १—मनुष्य जीवन का चरम और परम उद्देश्य मोक्ष अथवा प्रभु प्राप्ति है। इस लक्ष्य की प्रप्ति के लिये साधन करना। २—पुनर्जन्म अवश्य होगा और उसमें हमें अपने अच्छे बुरे कर्मों का फल निश्चित रूप से भोगना पड़ेगा। ३—शास्त्र सत्य हैं और उनके कथनानुसार सुख दुःख हमारे कर्मों का फल है। ४—कर्त्तव्य पालन करना ही हमारा धर्म है केवल अधिकार पाना नहीं। इन चारों बातों के कारण स्वभाव से ही भोगों के त्याग का महत्व था। उसी

में जीवन की महत्ता मानी जाती थी। चोरी जारी आदि पापों का फल विविध योनियों में अवश्य भोगना पड़ेगा—यह विश्वास था कि दूसरे की किसी भी वस्तु पर मन ललचाना पाप है और उसे छल बल कौशल से लेना महान् अपराध है। यह दृढ़ धारणा थी, इसी से लोग स्वभाव से ही पापाचरण से बचना चाहते थे।

२४४. आज ईश्वर का कोई भय नहीं, धर्म को अवनति का कारण बताया जाता है। शास्त्रों में विश्वास का अभाव है। सभी अधिकार चाहते हैं, कर्त्तव्य पर किसी का ध्यान नहीं है। धन का लोभ इतना बढ़ गया है कि उसने मनुष्य को असुर ही नहीं, पिशाच बना दिया है। मनुष्य ने केवल इसी सिद्धान्त को मान लिया है कि किसी भी उपाय से हो धन की, अधिकार की प्राप्ति होनी चाहिये। इसीलिये आजकल छल, कपट और धोखाबाज़ी बढ़ रही है।

२४५. सुख बाह्य पदार्थों में नहीं है वह तो अपने भीतर ही है, और वह वृत्तियों के निरोध से मिलेगा। श्रुति कहती है कि जैसे आकाश को चमड़े की भांति लपेटना असम्भव है ऐसे ही ईश्वर को जाने बिना सुख शान्ति का मिलना असम्भव है।

२४६. जो पुरुष सर्व चिकित्सा की सामग्री उपस्थित होने

पर भी रोग की चिकित्सा नहीं करता, वह रोगी औषधरहित स्थान में जाकर क्या करेगा ? वैसे ही मनुष्य शरीर प्राप्त करके, सत्संग आदि करते हुए भी जो जन्म मरणरूपी महा रोग से छूटने का उपाय नहीं करता, फिर कब और कहाँ करेगा।

२४७. संसार के दुःखों की निवृत्ति और नित्य सुख प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले मानवों को सत्संग द्वारा प्रभु प्राप्ति का ही साधन श्रद्धापूर्वक करते रहना चाहिए।

२४८. मानव जीवन ही जीव का यह अन्तिम पथ है जिस पर सावधानी से चलते हुए जीव को जीवन के चरम-लक्ष्य, सच्चिदानन्द की प्राप्ति हो सकती है। अगणित जन्मों में भटकते हुये प्राणी को प्रभु की ओर से नर देह रूपी उपहार मिला है इसको सार्थक करना चाहिये, फिर न जाने ऐसा स्वर्ण अवसर कब मिले।

२४९. सांसारिक सुख दुःख तो प्रारब्ध के अनुसार सदैव आते ही रहेंगे, उनके लिये व्यर्थ चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

२५०. बहुत सो चुके, अब झट पट उठकर प्रमादमयी निद्रा को त्याग कर तत्काल अपने लक्ष्य की ओर चल पड़ो, सच्ची लग्न तथा तत्परता के साथ अग्रसर हो जाओ, आओ, शीघ्र आओ, सफलता तुम्हें पुकार

रही है।

२५१. समुद्र रत्नों की खान है इसी कारण उसे रत्नाकर भी कहते हैं। रत्न समुद्र के गर्भ में गहराई में छिपे रहते हैं। रत्नों की प्राप्ति सुगमता से नहीं होती, उन्हें प्राप्त करने के लिये परम पुरुषार्थ की आवश्यकता है। कारण, कि रत्न वहकर तट पर नहीं आते, उन्हें प्राप्त करने वाला कोई चतुर गोता लगाने वाला ही हो सकता है। गोता लगाने के कष्टों से भयभीत होकर किनारे पर ही बैठे रहने से भला किस प्रकार रत्न मिल सकते हैं। "जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ। हौं बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ।" यदि रत्नों की अभिलाषा है तो गोता लगाना सीखकर गहराई में गोता लगाना ही पड़ेगा, अन्यथा रत्नों की प्राप्ति नहीं होगी।

२५२. इसी प्रकार उस परम आनन्द, परम शांति आदि रत्नों की प्राप्ति के लिये अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना होगा, सांसारिक कार्यों में, विषयों में संलग्न बहिर्मुखी वृत्तियां सरलता से अन्तर्मुखी नहीं होंगी, इसके लिये परम पुरुषार्थ, परम धैर्य और निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। यदि साहस छोड़ बैठे, तो जीती हुई बाज़ी हार जाओगे। दृढ़ निश्चय और सतत प्रयत्न से अवश्य ही सफलता

मिलेगा। वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाने पर अपार आनन्द का अनुभव कर यह मनुष्य जन्म धन्य हो जायगा।

२५३. इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है? जिस प्रकार रेल मार्ग से यात्रा करनेवाला यात्री ट्रेन में बैठने से पहले निश्चय कर लेता है कि मुझे कहां जाना है, वह अपने गन्तव्य स्थान का टिकट लेकर रेल में बैठता है। यदि वह घर से निश्चय करके न चले और टिकट बाबू से कहे कि हमें कहीं का टिकट दे दो, तो सोचो उसे बाबू कहां का टिकट देगा अथवा वह यात्री रेल में बैठकर कहां जायगा? कहीं भी नहीं। यात्री के समान हमें भी निश्चय करना है कि हमारा मुख्य लक्ष्य क्या है? यदि हमारा मुख्य लक्ष्य प्रभु प्राप्ति है तो फिर साधना में दिनोंदिन श्रद्धा और विश्वास बढ़ता रहेगा, किसी भी समय हमारी निष्ठा में कमी नहीं होगी। यदि साधना में श्रद्धा की कमी आने लगे, तो निश्चय जानो कि हमारा लक्ष्य प्रभु दर्शन नहीं है।

२५४. जिस प्रकार स्वतन्त्रता से छूटा हुआ पानी स्वाभाविक ही नीचे की ओर बहता है, इसी प्रकार यह मन और इन्द्रियां भी विषयों की ओर दौड़ लगाती

हैं। पानी को यदि नीचे से ऊपर की ओर ले जाना हो तो मशीन और पाइप लगाने पड़ेंगे, यदि ऐसा न किया जाय तो नीचे की ओर बहने वाला पानी अपने आप कदापि न चढ़ सकेगा। इसी प्रकार यदि साधन, भजन, संयम आदि न किये तो निश्चय ही विषय भोगों की कीचड़ में फँस कर चौरासी लाख योनियों के महान् कष्ट भोगने पड़ेंगे।

२५५. यदि भोगों में ही आयु बिताई तो निश्चय समझो पारस मणि छिन जायगी और काँच किरच मिलेगी।

२५६. जिस प्रकार सांसारिक कामों में अनेक कष्ट आते हैं उसी प्रकार परमार्थ पथ के पथिक को भी अनेक कष्टों का सामना करना पड़ेगा, आगे चलकर ना ना प्रकार के प्रलोभन तथा मान सम्मान सामने आयेंगे किन्तु इन प्रलोभनों की ओर उदासीन रहना होगा। साथ ही कहीं निन्दा और अपमान भी होगा, तब प्रशंसा के समान निन्दा और अपमान की ओर से भी उदासीन रहना होगा। प्रतिकूल और अनुकूल दोनों परिस्थितियों को अपनी कठिन परीक्षा समझ कर फूंक फूंक कर आगे क़दम रखना चाहिये।

२५७. यदि तुम संसार की परवाह करोगे, तो तुम्हें यह स्वार्थी संसार कदापि आगे नहीं बढ़ने देगा, सदैव तुम्हें पीछे की ओर ही घसीटने का प्रयत्न करेगा। अपने लक्ष्य को सदा याद रक्खो और इस पथ पर निर्बाध गति से अग्रसर होते जाओ, अपने गंतव्य लक्ष्य की ओर सावधान रहने से सभी विघ्न बाधायें तुम्हें तृण समान जान पड़ेंगी और मार्ग सुखमय दिखाई देगा।

२५८. सच्चा और वास्तविक आनन्द तो तुम्हारे भीतर ही छिपा हुआ है। उस आनन्द की अनुभूति अपनी चंचल वृत्तियों का निरोध करने से ही हो सकेगी।

२५९. वाह्य वस्तुओं में तो सुख है ही नहीं, कहावत है—
"बाहर के पट बन्द कर अन्दर के पट खोल।"
तुम्हारे अन्तःकरण के एक जन्म के नहीं अनन्त जन्मों के पट बन्द हैं उन्हें ध्यान द्वारा खोलने का यत्न करो। जो किवाड़ एक वर्ष लगातार बन्द रहें, तब उन में ऐसा जंग लग जाता है कि उनके खोलने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। फिर भला उन कपाटों का कहना ही क्या है जो जन्म जन्मान्तरों से बन्द पड़े हैं वे क्या भला साधारण प्रयत्न से ही खुल जायेंगे, उनके लिए तो बहुत संघर्ष की आवश्यकता है। इस संघर्ष में यदि प्राणों

की बाजी लगानी पड़े तो प्रसन्नता से लगादो, कारण कि बार बार मरने की अपेक्षा एक बार ही मर जाना अधिक अच्छा है। इस प्रयत्न में यदि शरीर छूट भी जायगा, तो निश्चय ही परम पद के अधिकारी बन जाओगे।

२६०. शरीर के लिये वस्त्रों की आवश्यकता है शृंगार के लिये नहीं, शरीर की रक्षा के लिये भोजन की जरू- है स्वाद के लिये नहीं।

२६१. आज कल तो कुछ ऐसा वातावरण बन गया है आवश्यकताओं की कुछ ऐसी बाढ़ सी आगई है कि मनुष्य अपने तन मन की सुध भूले हुये भोगों की पूर्ति में ही संलग्न हैं। उन्हें परलोक का ध्यान ही नहीं आता, वे सदैव इसी चिन्ता में रहते हैं कि गुजारा कैसे होगा। वे कभी यह विचार नहीं करते कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक, विश्वम्भर, परम पिता चींटी से लेकर हस्ती पर्यन्त सभी के भोजन आदि का प्रबन्ध करता है और तो क्या उसी दयामय ने गर्भ अवस्था में हमारी रक्षा की है क्या उस समय कोई भी अपना था सोचो क्या हमारे पुरुपार्थ से हमारी रक्षा हुई थी? कदापि नहीं।

२६२. अरे भोले मानव! तू कितने भ्रम में है तुझे अपने पुरुपार्थ में अपनी शक्ति जान पड़ती है तू भूल जाता

है कि सर्व शक्तिमान् सर्वेश्वर की शक्ति से ही तू शक्तिमान् बना हुआ है।

२३३. प्रभु पर अटल और अटूट विश्वास रखकर ही हम परमार्थ पथ के पथिक बन कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

२३४. निश्चय करो कि मंगलमय प्रभु का प्रत्येक विधान मंगलमय है, हम नहीं जान सकते कि हमारी प्रतिकूल परिस्थिति में भी उनकी कौन सी मंगल कामना छिपी हुई है। विश्वास रक्खो कि वे सदैव हमारा कल्याण ही कर रहे हैं और करेंगे।

२६५. प्रमाद रहित होकर हमें सदैव अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रखना चाहिये, प्रमाद और आलस्य जीव के परम शत्रु हैं।

२६६. प्रभु का निवास स्थान मानव हृदय है। वे हृदय की ही परख करते हैं इसलिपे हृदय को पवित्र और शुद्ध रक्खो और उस पवित्र हृदय से प्रभु को पुकारो।

२६७. सदैव इस बात का ध्यान रक्खो कि हमारी किसी क्रिया से किसी का अहित न हो, किसी को दुःख न हो। यदि हम किसी को दुःख पहुँचाते हैं, किसी के अहित का कारण बनते हैं, तो निश्चय ही प्रभु की अवज्ञा करते हैं।

२६८. जिस प्रकार बबूल के वृक्ष में काँटों का होना स्वा-

भाविक है चाहे उसे पानी के स्थान पर दूध से ही क्यों न सींचा जाय। इसी प्रकार मनुष्य जीवन में सभी पर दैहिक, दैविक और भौतिक तापों का आना अनिवार्य है। किसी पर कम किसी पर अधिक, यह अपने प्रारब्ध अनुसार है। जिस प्रकार जूता पहन लेने से कांटे आदि नहीं लग सकते, इसी प्रकार इन तापों से बचने के लिये नित्य सत्संग, स्वाध्याय और ईश्वर उपासना अनिवार्य है। दुःख तो प्रारब्ध अनुसार आवेंगे ही, किन्तु सत्संग के प्रभाव से उन्नत विचार शक्ति द्वारा उन दुःखों से मन दुःखी नहीं होगा।

२६९. सत्संग तथा प्रभु पर विश्वास न होने के कारण ही आज संसार त्रिविध तापों से संतप्त है। दुःखों का पारावार नहीं, सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य है। यदि मनुष्य सत्संग का आश्रय ले ले, प्रभु में विश्वास करके उसका भजन ध्यान करे तो निश्चय ही तीनों तापों से उसका छुटकारा हो जाए।

२७०. परमार्थ पथिक को कभी अपनी इन्द्रियों और मन को मित्र नहीं समझना चाहिये, वे तो सदैव शत्रु ही बनी रहेंगी, उनसे बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

२७१. जिस प्रकार किसान को खेत में अन्न पैदा करने के

लिये बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है, जमीन जोतनी होती है, बीज बोना पड़ता है, फिर पानी देना होता है, अन्त में पशु पक्षियों से रक्षा करनी पड़ती है, तब कहीं समय आने पर अन्न के दर्शन होते हैं; परन्तु घास स्वयं ही उत्पन्न होती रहती है, उसे उगाने के लिये किसान कुछ परिश्रम नहीं करता। इसी प्रकार मानसिक विकार तो स्वयं ही उत्पन्न होते रहते हैं, वे उपाय करने से ही दूर होंगे। इसलिये धैर्य पूर्वक साधन करना चाहिये।

२७२. मानसिक रोगों का मुख्य कारण मोह है। शरीर का मोह, धन का मोह, पद पदवी का मोह। इस मोह ने सारे संसार को अन्धा बना रक्खा है। मोह के निवृत्त होते ही सब रोग स्वतः दूर हो जाते हैं। मोह एक भयंकर विष है, विष के प्रयोग से तो मनुष्य इसी जीवन में एक बार मरता है किन्तु मोहरूपी महा विष मनुष्य को बार-बार मारता रहता है। मैं, मेरा और तेरा, यह मोह की परिभाषा है। इस अज्ञान के कारण ही जीव बन्धन में पड़ा है।

२७३. जो वस्तु जैसी है. उसका जैसा स्वरूप है, उसको ठीक वैसा ही जानना ज्ञान है। ज्यों का त्यों न जानना अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण अजर अमर अविनाशी आत्मा अपने को नाशवान् देह

समझ कर स्वयं ही दुःखों का आह्वान करता है। अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर मोह में फंस गया है। इस दलदल से निकलने का एकमात्र उपाय यही है कि मूल पर कुठाराघात किया जाय। मैं और मेरे की अनुभूति देहाभिमान के कारण होती है। मोह के विष वृक्ष को उत्पन्न करनेवाला देहाभिमान ही है। अतएव देहाभिमान को नष्ट करने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। इसे नष्ट करने के लिये दृढ़ निश्चय करो कि मैं शरीर नहीं हूँ, अमर आत्मा हूँ, ईश्वर का अविनाशी पुत्र हूँ। मेरा नाश कभी नहीं होगा, यह शरीर मेरा वस्त्रमात्र है। इस मानव योनि में आने से पहले भी मैं था और इसके नष्ट होने पर भी मैं सदैव रहूँगा।

२७४. संसार के पदार्थों में स्थूल दृष्टि से आनन्द दिखाई पड़ता है किन्तु वास्तविक आनन्द का भण्डार तो परमात्मा है और उस आनन्द का उद्गम स्थान हृदय है। विषयासक्त होने के कारण हम झूठे क्षणिक सुख के चक्कर में फंसकर वास्तविक आनन्द से दूर हट जाते हैं।

२७५. हृदय सिंहासन पर विराजमान आनन्दस्वरूप प्रभु की आनन्दमयी झांकी के सामने सांसारिक विषयों का एक स्थूल आनन्द फीका पड़ जाता है इसी कारण हम

उस वास्तविक आनन्द से वंचित हो जाते हैं। जिस प्रकार दर्पण पर धूल जम जाने से अपने मुख का प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार हमारे मानसिक दर्पण पर विषयों की धूल का स्थूल आवरण छा गया है। यदि उस आनन्द के सागर की चाह है, सच्चे सुख और शान्ति की खोज है, तो इस आवरण को नष्ट करना होगा।

२७६. जिज्ञासु को सदैव प्रसन्न रहना चाहिये। दम्भ और कपट का उसमें अभाव होना चाहिये, ईश्वर और प्रारब्ध में पूर्ण विश्वास तथा यथा प्राप्त में सन्तोषी होना चाहिये।

२७७. सदैव निश्चिन्त रहें। चिन्ता रूपी डायन को दूर से ही प्रणाम करें। चिन्ता ऐसी सर्पिणी है कि जो जीवित मनुष्य को मृतक से भी बदतर बना देती है। मनुष्य को भीतर से जर-जर कर देती है। चिता तो शरीरांत के पश्चात् शव को जलाती है, किन्तु चिन्ता जीवन को ज्वालामय बना देती है, घुन जैसे भीतर ही भीतर लकड़ी को खा कर पोला कर देता है ऐसे ही चिन्ता भी मनुष्य को जीवित शव बना देती है।

२७८. मानव जीवन के परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाला परमार्थ पथिक अपनी समस्त चिन्ताओं का

भार मंगलमय प्रभु के चरणों में समर्पित कर इस जीवन में आनन्द और शान्ति का अनुभव करता हुआ अन्त में सच्चिदानन्द की प्राप्ति कर लेता है।

२७९. दम्भ और कपट यदि मन में डेरा जमाये हुये हैं तो साधन में कदापि सफलता नहीं मिल सकती, अतएव साधक को अपने लक्ष्य की ओर सावधानी से दृष्टि रखते हुये सत्संग और निरीक्षण द्वारा दम्भ और कपट को अपने अन्तःकरण से निकालने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये। दम्भ और कपट की भावनाएँ ऐसा आवरण है जो अन्तःकरण को मलिन कर देता है और साधक को आगे नहीं बढ़ने देता।

२८०. हरे भरे वन से निकल कर भटकता हुआ मृग जब बालुकामय विस्तीर्ण रेगिस्तान में पहुँचकर छलाँगें भरने लगता है और प्यास लगने पर पानी की खोज करता है। गर्दन ऊपर उठाकर दूर-दूर तक दृष्टि डालता हुआ निराश मृग देखता है कि वह थोड़ी दूर पानी दिखाई देता है। शीघ्रता से प्यास बुझाने के लिये चौकड़ी भरता हुआ वहाँ पहुँच कर जब देखता है कि पानी नहीं रेत है, तो पुनः आगे देखता है किन्तु उसे पानी के स्थान पर तप्त बालु ही सब जगह मिलती है। तब वह प्यासा मृग उसी

तप्त बालु में तड़प तड़प कर मर जाता है। मृग-मरीचिका की भांति आज का मनुष्य भी इन संसारी विषयों में ही आनन्द की खोज करता हुआ मृग की भांति भटक रहा है।

२८१. जहां पर जो वस्तु नहीं है वहां खोजने से कैसे मिलेगी। सूक्ष्म दृष्टि से आप विचार करेंगे, तो इसी निश्चय पर पहुँचेंगे कि आनन्द का उद्गम स्थान स्वयं आपके शरीर रूपी मन्दिर का निवासी परमात्मा है। वास्तव में वहीं से आनन्द मिलेगा।

२८२. जिन जिज्ञासुओं ने प्रभु को इसी जीवन में पहचानने, साक्षात्कार कर लेने का लक्ष्य बना लिया है वे विषयों को चमकीले सर्प की भांति समझ कर इनसे दूर रहते हैं, वही धन्य हैं।

२८३. इस आनन्दमार्ग से विमुख हतभाग्य मनुष्य ही विषयों की मदिरा से उन्मत्त बनकर अपने मानव-जीवन को नष्ट कर डालते हैं। अपने पैरों में स्वयं कुल्हाड़ी मारकर वे अपना लोक और परलोक दोनों बिगाड़ लेते हैं।

२८४. जिस प्रकार स्वर्ण की खान से सोना, लोहे की खान से लोहा आदि धातुएँ प्राप्त होती हैं इसी प्रकार प्रभु-भक्ति रूपिणी आनन्द की खान से सुखों की प्राप्ति होती है। सुख की इस खान का पता सत्संग

द्वारा मिलना सम्भव है। सत्संग विमुख प्राणी उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

२८५. किसी किसान ने अपने खेत में आलू बोये। एक महीने के पश्चात् उसके सम्बन्धी ने कहा, तुमने आलू व्यर्थ बोये, यदि गेहूँ बोते तो अधिक लाभ होता। यह सुनकर उस किसान ने सोचा, बात तो ठीक है आजकल आलू का भाव सस्ता है, गेहूँ महंगे हैं, इस कारण इनमें अधिक लाभ होगा। बस उसने दूसरे ही दिन अपना आलू का खेत उजाड़ कर गेहूँ बो दिये। कुछ दिनों बाद उसने सुना कि गुड़ शक्कर का भाव दिनों दिन बढ़ता जा रहा है और सरकार ने गन्ने का रेट भी पिछले वर्ष से दूना कर दिया है। बस उसने अधिक लाभ की आशा से पुनः उस खेत को जोत डाला और ईख की फसल को अपने खेत में लहलहाते देखने के लिये गन्ने का बीज गाड़ दिया। उसके खेत में आलू, गेहूँ अथवा गन्ना तीनों में से एक की भी फसल तय्यार नहीं हुई। आप उस किसान को महामूर्ख ही कहेंगे। ठीक यही दशा उन जिज्ञासुओं की भी होती है जो अपना साधन जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं। कभी कुछ साधन किया, फिर कुछ इस प्रकार इधर उधर भटकते हुये समय को नष्ट कर देते हैं।

२८६. एक समय किसी महात्मा के आश्रम में कोई जमीदार सज्जन आये, आश्रम में उस समय एक प्रसिद्ध रामायणी की कथा हो रही थी। रामायणी जी श्री राम तथा भरत जी के अनुपम भ्रातृ-प्रेम तथा त्यागमय भाव का वर्णन कर रहे थे। कथावाचक की वर्णनशैली बहुत ही सुन्दर तथा भावुकता पूर्ण थी। जमीदार महोदय ने उस कथा को बड़ी श्रद्धा से श्रवण किया। प्रेम के कारण उसकी आंखों से जल की धारा बहने लगी, वह प्रेम में मग्न होगया और कथा की प्रशंसा करते हुए स्वामी जी से कहा कि महाराज जी! पंडित जी ने कथा करने में कमाल कर दिया, बड़ी सुन्दर कथा कही। आनन्द की वर्षा कर दी। भरत जी का प्रसंग तो रामायण का हृदय है। इस प्रकार वार्तालाप होने के पश्चात् स्वामी जी ने पूछा, भैया! यहाँ कैसे आना हुआ? जमीदार बोला, क्या बताऊँ महाराज जी! मेरा छोटा भाई बहुत बेईमान है, मेरे हिस्से की भूमि दबाये बैठा है, उसी पर दावा करने आया हूँ। उसे जेल हो जाए तभी वह मानेगा। स्वामी जी ने पूछा, क्या तुम्हारा भाई चचेरा है? जमीदार बोला, नहीं महाराज! वह मेरा सगा माँ जाया छोटा भाई है। स्वामी जी सुनकर चकित रह गये।

२८७. पाठक विचार करें, इन जमीदार महोदय की राम-भक्ति, रामायण प्रेम, श्री भरत के प्रसंग को श्रवण कर गद्गद् हो जाना, प्रेम के आंसू बहाना क्या कोरा ढोंग नहीं है। श्रीराम ने तो अपनी विमाता के पुत्र के लिये चक्रवर्ती राज्य को ठुकरा, बन की राह ली थी। उन्हीं श्रीराम की पावन गाथा के भक्त यह बेचारे जमीदार जी दस पाँच बीघे भूमि के लिये सहोदर भाई को अदालत के द्वारा जेल भिजवाना चाहते हैं। राम की ऐसी ऊपरी भक्ति दिखावामात्र है, विडम्बना है। गंगा के पवित्र जल में पड़े हुये पत्थर के भीतर जैसे जल का प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार ऐसे बनावटी भक्तों के हृदय को समझना चाहिये।

२८८. जीव ने अपनी इच्छाओं के स्थूल आवरण द्वारा आनन्द के स्रोत को आच्छादित कर लिया है, इन घनीभूत इच्छाओं और कामनाओं का अमूल नाश किया जाय, तब उस परमानन्द की अनुभूति हो सकती है।

२८९. एक बुढ़िया माता सड़क पर बिजली की रोशनी में कुछ ढूंढ रही थी। उधर से आने वाले एक सज्जन ने बुढ़िया से पूछा, मैया क्या खोज रही हो? तुम्हारा क्या खोया गया है? बुढ़िया बोली, बेटा

मेरी सूई खोई गई है उसे ढूंढ रही हूँ। उस व्यक्ति ने पूछा यहां सड़क पर सूई कैसे गिर गई ? बुढ़िया बोली, सूई तो मेरी अपनी झोंपड़ी में गिरी थी, परन्तु वहां अंधेरा है इसलिये यहां प्रकाश में ढूंढने आई हूँ। बुढ़िया की बात सुनते ही वे सज्जन ठट्ठा मार कर हँस पड़े, साथ ही उस स्थान पर एकत्र सभी व्यक्ति उस वृद्धा की मूर्खता पर हँसने लगे। आप भी हँसेंगे, इस पागलपन की बात पर कि सूई तो गिरी झोंपड़ी में, और ढूंढ रही है सड़क पर। इस दृष्टान्त के दार्ष्टान्त का सार यही है कि, आज सारा संसार जहां आनन्द की खोज कर रहा है वहां उसकी प्राप्ति करोड़ों जन्मों में भी नहीं हो सकती, जो वस्तु जहां पर है ही नहीं, वहां मिलेगी कैसे ?

२६०. विषयों की छिपी हुई अन्तर्वासना का नाश किये बिना भजन के आनन्द रस की अनुभूति असम्भव है। मुख में नमक की डली भी पड़ी रहे और मिश्री का स्वाद भी आजाय; ऐसा हो ही नहीं सकता। मिश्री का स्वाद चखने के लिये पहले मुख में पड़ी हुई नमक की डली निकाल कर फेंकनी होगी, और फिर मुख शुद्धि करके उस मिश्री को मुख में डालेंगे तभी मिश्री के मिठास का पता चलेगा।

२९१. एक सन्त के पास बहुत से व्यक्ति नित्य प्रति जाया करते थे, वे परम दयालु सन्त सरल युक्तियों से जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान कर देते थे। सन्त कहा करते थे कि यदि मनुष्य वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने का इच्छुक है तो उसे भूल कर अपना एक क्षण भी विषय संग में व्यर्थ व्यतीत नहीं करना चाहिये। एक बार किसी भक्त ने प्रश्न किया कि महाराज ! जब इन सांसारी विषयों की अपेक्षा भजन का आनन्द सर्व उत्तम है तो फिर हमारा मन विषयों की ओर जाता ही क्यों है। जहां जब अधिक लाभ होता है तो फिर साधारण तुच्छ लाभ की ओर दृष्टि नहीं जानी चाहिये थी, स्वादिष्ट मिष्टान्न प्राप्त हो जाय, तो सूखे चनों पर मन क्यों जायगा।

महाराज जी ने कहा भाई तुम ठीक कहते हो, बात कुछ ऐसी ही है। सभी जानते हैं कि हलवाई के स्वच्छ थाल में सजी हुई सुन्दर मिठाइयों पर बैठी हुई मक्खियां जब हलवाई की दुकान के सामने विष्टा की भरी टोकरी को लेकर निकलने वाली मेहतरानी को देखती हैं तब तुरन्त थाल से उड़कर विष्टा की दुर्गन्धमय टोकरी पर ही टूट पड़ती हैं। बताओ भला थाल की मिठाइयां अच्छी हैं या उस टोकरी

की विष्टा।

२९२. भैया ! शूकरी को अपना भोज्य ही प्रिय है। वह तुम्हारे मेवा मिष्टान्न और केवड़े के इतर में बसाये हुये मोदकों को छोड़कर अपना प्रिय भोजन ही करेगी। ठीक इसी प्रकार से इस मनीराम जी का हाल है इनकी दशा भी मक्खी और शूकरी के समान है।

२९३. साधक बनकर भी यदि हमारा मन और इन्द्रियां विषयों का संयोग होने पर चील की तरह टूट पड़ती हैं तो निश्चय ही समझना चाहिये कि अभी बहुत कमी है।

२९४. अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त करने के लिये मन और इन्द्रियों के प्रबल कामना प्रवाह को नियंत्रण करना होगा। विवेक दृष्टि से विचार करना होगा कि हमारे मन ने जहां जिस पदार्थ में सुख की धारणा बना ली है उन सभी में दुःख भरा हुआ है, अर्थात् सुख प्राप्ति की सर्व नाशक लालसा को तिलांजली देकर ही हम उस चिर शांति दायक मार्ग के पथिक बन सकते हैं, जिस पर जाने के लिये ही यह अमूल्य नर देह हमें मिली है।

२९५. मोह जिसे डिगाता नहीं, संशय जिसे घेरता नहीं, दोष जिसे छू नहीं सकते और जो सदा सावधान

रहता हुआ साधना में लगा रहता है वही सच्चा जिज्ञासु है।

२९६. वासना के संसार का अनन्त विस्तार है। अनासक्ति संसार को छेदन करने का शस्त्र है, संसार के बन्धनों से छूटकर परमेश्वर को प्राप्त करना परम आवश्यक है। भाग्य के भरोसे पड़े रहने से नहीं, परम पुरुषार्थ से जीव को परमेश्वर की प्राप्ति होती है। वह परमेश्वर सब के हृदय में रहता है उसे जानने का प्रयत्न करना प्रत्येक नर नारी का परम धर्म है।

२९७. परमेश्वर का ज्ञान होते ही पाप रूपी उल्लू छिप जाते हैं, काम क्रोध के कुमुद मुँद जाते हैं, ईर्षा, मान, मोह और मद रूपी चोरों का छल नहीं चलता, धर्म के तालाब में ज्ञान विज्ञान के कमल खिल जाते हैं। सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक के चकवे प्रसन्न होकर विचरते हैं और जीवन सफल हो जाता है।

२९८. श्रद्धा के समान प्रभु की प्राप्ति में सहायक कोई दूसरा साधन नहीं है।

२९९. परमेश्वर से नाता जुड़ जाने पर यह संसार रूपी कारागार ऐश्वर्य पूर्ण समृद्ध राज्य बन जाता है।

३००. सत्संग मनुष्य की सदा सहायता करता है। सत्संग से अन्तःकरण शुद्ध होता है और परमेश्वर का दर्शन करने योग्य ज्ञान की आंखें खुलती हैं और सत्संग

दुःख में धैर्य होता है।

३०१. क्रोध का त्याग मनुष्य को मनुष्य बनाता है। जो क्रोध की आग में नहीं जलता, उसी को शान्ति मिलती है। क्रोध एक प्रकार का हल्का विष है जो स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है।

३०२. क्रोध को जीतने वाला सदा विजय पाता है। शरीर और मन को जलाने वाला क्रोध सदा त्यागने योग्य है।

३०३. पर निन्दा अथवा पर दोषों का विचार करने से अपने ही मन में बुराइयां भर जाती हैं। दोषों को देखने वाला मन गुणों को नहीं देखता, और अपनी सद् विचार की शक्ति को खो बैठता है। प्रायः अपने दोषों और बुराइयों को ढकने के लिये पर निन्दा का सहारा लिया जाता है।

३०४. अपने दोषों को देख कर उन्हें दूर करने और भूलों का सुधार करने से पर निन्दा की आदत छूटती है।

३०५. ज्ञानी जन जीवन के पतन को मृत्यु कहते हैं। घिसट घिसट कर, सिसक-सिसक कर जीना मरने से अधिक दुःखदाई है।

३०६. आत्म साक्षात्कार के मार्ग में कामना बहुत बड़ी बाधा है। मनो निग्रह का अर्थ है कामनाओं का त्याग।

३०७. यदि मनुष्य मन को नियंत्रित करना चाहता है, तो उसे सारी कामनाओं का, सांसारिक वस्तुओं की तृष्णा का तथा मन की सारी कल्पनाओं का परित्याग करना होगा।

३०८. वन्दर के समान मन सदा चँचल रहेगा, जिस तरह मछली जल से बाहर निकल जाने पर वह पुनः जल में किसी न किसी तरह प्रवेश करना चाहती है उसी तरह मन भी बुरे विचारों के विना चैन नहीं लेगा। सारी कामनाओं को छोड़कर, मन को वशीभूत कर, सारे आवेगों से मुक्त कर मनुष्य मन की एकाग्रता प्राप्त कर सकता है।

३०९. यदि मनुष्य अपने मन को सांसारिक वस्तुओं में स्वेच्छा पूर्वक भटकने देगा, तथा अपवित्र विचारों एवम् कामनाओं को आश्रय देगा, तो अन्त में विनाश की प्राप्ति होगी ही।

३१०. कामनाओं का परित्याग कीजिये, सदा परम सुख, शान्ति आनन्द को प्राप्त करने के लिये साधन शील रहिये, लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न कीजिये, सफलता अवश्य मिलेगी, संशय न कीजिये।

३११. वर्तमान काल में लोगों में यथार्थ बुद्धि नहीं है। उनमें सत्य असत्य का विवेक नहीं है। वे मायामकर, छल कपट के चँगुल में फँसे हुए हैं, वे सांसा-

रिक कामनाओं तथा भोगों का शिकार बन बैठे हैं। वे अपने दिव्य जन्म अधिकार को भूलकर बन्धन में जकड़े हुए हैं, जन्म मृत्यु की महान् व्याधि से मुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति ही दिव्य जीवन का अधिकार है।

३१२. मृत्यु काल का अन्तिम विचार ही पुनर्जन्म का निर्णायक होता है जो जिस वस्तु का विचार मन में रख कर शरीर का त्याग करता है वह उसी वस्तु को प्राप्त करता है (गीता अ० ८ श्लोक ६)।

३१३. यदि मनुष्य की अपने कुत्ते में अधिक आसक्ति है तो मृत्यु काल में कुत्ते का विचार ही प्रबल रहेगा, तथा उसको दूसरे जन्म में कुत्ते ही की योनि प्राप्त होगी। यदि मनुष्य सदा शरीर का ही चिन्तन करता है तथा इस नश्वर शरीर में ही आसक्त बना रहता है, तो उसे पुनः जन्म लेना पड़ेगा। यदि मनुष्य आजीवन प्रभु का ही चिन्तन करता है तो मृत्यु के समय प्रभु का चिन्तन ही होगा और मनुष्य निश्चय ही जन्म मृत्यु से मुक्त होकर शाश्वत सुख को प्राप्त करेगा। इसके लिये मनुष्य का मन पूर्णतः नियंत्रित अनुशासित, सुसंस्कृत, शुद्ध तथा ईश्वर परायण होना चाहिये।

३१४. मन दर्पण के समान है। जब दर्पण गन्दा तथा

धूमिल है तो आप अपने चेहरे को उसमें साफ नहीं देख सकते, उसी तरह जब मन मलिन है, कामनाओं के जाल में आबद्ध है तो आप आत्मा के दर्शन नहीं कर सकते।

३१५. जिस तरह खुजली में पीड़ित अंग सदा खुजलाता रहता है उसी तरह इच्छा कामनाओं के कारण मन भी सदा खुजलाता रहता है। अथक, अदम्य तथा नियमित साधन, ध्यान, जप, सत्संग, स्वाध्याय आदि के द्वारा इस खुजलाने वाले मन को शुद्ध बनाइये।

३१६. अधिकांश लोगों ने मन को ढीला छोड़ दिया है। मन उस बिगड़े हुए बच्चे के समान है जिसे उसके माता पिता ने अधिक लाड प्यार से बिगाड़ दिया है। हम में से बहुतों का मन जंगली जानवर के समान है, वायु में हलके पंख के समान तथा तूफान में जलपोत के समान यह मन भी सदा राग द्वेष से आन्दोलित होता रहता है। नगर की गलियों में फिरने वाले कुत्ते की तरह यह भी विषय वस्तुओं की ताक में दूर-दूर चक्कर काटता रहता है, यह कभी भी तृप्त नहीं होता, कल्पना शक्ति के द्वारा मन बड़ा उपद्रव कर बैठता है इसको वश में करना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है।

३१७. बहुत सावधानी पूर्वक अपने मन का निरीक्षण कीजिये, चिड़ चिड़ापन, क्रोध तथा घृणा की वृत्ति को मन के तल पर उत्पन्न न होने दीजिये। बुरे विचार, बुरे भाव तथा पाप पूर्ण वृत्ति को मन में प्रवेश न करने दीजिये।

३१८. प्रकाश के आते ही अन्धकार दूर हो जाता है। यदि आप दिव्य गुणों को अपनायेंगे तो बुरे गुण स्वयमेव दूर हो जायेंगे।

३१९. साहस भय पर विजय पाता है, धैर्य क्रोध तथा चिड़चिड़े पन को दूर करता है। प्रेम घृणा पर विजय पाता है। इस प्रतिपक्ष भावना का अभ्यास कीजिये।

३२०. वैराग्य, त्याग, ध्यान, आवश्यकताओं की कमी, कामनाओं का निग्रह आदि साधनों से इन्द्रिय दमन में सहायता मिलती है। इन्द्रिय बहुत ही सबल तथा प्रबल है, उन्हें विचार तथा विवेक द्वारा बुद्धिमानी से शनैः शनैः वशीभूत करना चाहिये। यह एक दिन अथवा महीने का काम नहीं है, यह तो धैर्य युक्त सतत संग्राम है। धैर्य तथा संलग्नता पूर्वक आगे बढ़ते जाइये।

३२१. सत्संग से बल मिलता है तथा इन्द्रिय दमन में सहायता मिलती है। ईश्वर की कृपा तो अनिवार्य

है ही। आत्म समर्पण, श्रद्धा तथा भक्ति के द्वारा ईश्वर कृपा प्राप्त कीजिये।

३२२. विषय सुख भ्रामक, मोहक तथा काल्पनिक हैं। राई भर सुख पर्वत भर दुःखों से मिश्रित है। भोग के द्वारा इच्छा की तृप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत यह तृष्णा के द्वारा मन को अधिक अशांत बना देता है। विषय सुख ब्रह्मज्ञान का शत्रु है। विषय सुख जन्म तथा मृत्यु का कारण है। अपने मन के समक्ष आत्मिक जीवन, अमृतत्व, नित्य शांति, परम सुख, असीम आनन्द आदि आत्म-साक्षात्कार के फलों को रखिये। यदि आप इन बातों को सदा याद रक्खेंगे तो मन विषय सुखों की तृष्णा से मुक्त हो जायगा।

३२३. पंचतत्त्वों से निर्मित शरीर के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर उसे ही आत्मा समझने लगना, यही निकृष्ट अहंकार है, यह पुनर्जन्म के विष वृक्ष की वृद्धि का कारण है। इस प्रकार के अहंकार से विनाशकारी परिणाम उत्पन्न होते हैं, इस से मनुष्य पशु की अवस्था तक उतर आता है। आत्मज्ञान वह अग्नि है जो अहंकार के बीज को ही विनष्ट कर देता है।

३२४. एम. ए., बी. ए. बनना आसान है परन्तु अभिमान

को दूर करना, जोकि सारे क्लेशों का मूल है बहुत ही कठिन है।

३२५. मलिनता, अशक्तता तथा हृदय दौर्बल्य से ऊपर उठिये, वीर बनिये, सदा प्रसन्न रहिये, करुणा, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता आदि दैवी सम्पत का विकास कीजिये, आप निश्चय ही परम सुख तथा आनन्द प्राप्त करेंगे।

३२६. वीर साधक! अपनी अमर आत्मा की शरण लीजिये, अपने संकल्प के पक्के रहिये, सत्य के मार्ग का अनुगमन कीजिये, सावधानी पूर्वक अपने मन का निरीक्षण कीजिये, उपद्रवी इन्द्रियों को अनुशासित कीजिये, ज़बान तथा मलिन कामनाओं को रोकिये, संसार सागर को पार कर अमृतत्व, शाश्वत शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करिये।

३२७. ईर्षा बहुत बुरी है। इससे बढ़कर मनुष्य की अन्य कोई पाप प्रवृत्ति नहीं हो सकती, यह सारी बुराइयों की जड़ है। यदि किसी व्यक्ति का मन ईर्षा से भरा हुआ है तो वह सच्चे सुख का लेशमात्र भी अनुभव नहीं कर सकता। हृदय ईर्षा से जल रहा हो, तब भला मन में शान्ति कैसे रह सकती है इससे तो मन सदा जलता ही रहेगा।

३२८. प्रत्येक साधक को सदा सावधान रहना चाहिये,

उन्हें नाम, यश, शारीरिक आराम, अपनी जबान का गुलाम नहीं बनना चाहिये।

३२९. यदि ईर्षा है तो मनुष्य ईश्वर से बहुत दूर है। दूसरे के सुख में मनुष्य को सुखी होना चाहिये। यह भली भांति याद रखना चाहिये कि सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं तथा अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा फल भोग रहे हैं। दूसरों से ईर्षा करना दुर्वल, कायर तथा डरपोक व्यक्ति का निकृष्टतम स्वभाव है।

३३०. कोई व्यक्ति आप के साथ बुरा व्यवहार करे, आप का अनादर करे तथा अपमान करे, उस समय अपने मन का निरीक्षण कीजिये। यदि इन विषम परिस्थितियों में भी आप शान्त, नम्र रहते हैं तथा समत्व बुद्धि रखते हैं तो आपने दर्प रूपी शत्रु पर विजय पा ली है।

३३१. क्रोध सारे आध्यात्मिक पुण्यों को एक ही क्षण में नष्ट कर डालता है! यह शान्ति का महान् शत्रु तथा नरक का राजपथ है। यदि साधक आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति कर सुख प्राप्त करना चाहता है तो उसे क्रोध पर विजय पानी चाहिये। जिसने क्रोध पर विजय पाली है वह निश्चय ही महात्मा है।

३३२. यदि कोई गाली देता है अथवा अपमानित करता

है तो शान्त बने रहिये, आत्मा को न तो कोई हानि पहुँचा सकता है और न उसे अपमानित ही कर सकता है।

३३३. साधन मार्ग में भय बहुत बड़ी बाधा है। कायर साधक आध्यात्मिक मार्ग के लिये पूर्णतः अनाधिकारी है। यदि अमृतत्व को प्राप्त करना है तो अपने जीवन की भी तिलाञ्जली देनी होगी। आत्म संयम के बिना आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

३३४. भय तो काल्पनिक वस्तु है यदि आप उन्नति करना चाहते हैं तो मन की इस व्याधि को अवश्य दूर भगाना होगा, भय पर विजय पा लेने पर मनुष्य सफलता के सुन्दर मार्ग पर सुगमता से चल सकता है।

३३५. ऐसा अनुभव करना चाहिये कि इस जगत में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिससे मनुष्य भय करे। आपको वीर साहसी तथा शक्तिशाली बनना चाहिये।

३३६. इस नश्वर शरीर के साथ सारी आसक्ति का त्याग कर अन्तर्यामी परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर आप पूर्ण निर्भय रहिये।

३३७. भक्ति प्रधान साधक को ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये, उसे ईश्वर की शरण में सर्वभाव से जाना

चाहिये, पूर्ण विश्वास रहे कि ईश्वर ही एक आश्रय तथा अवलम्बन है ।

३३८. मन को सदा शान्त रखिये, दूसरों के विचारों से प्रभावित न होइये, सत्य के मार्ग पर अपने अन्तः-करण की सम्मति से आत्मा की मधुर झांकी के लिये वीरता एवं प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ते जाइये, यदि आप का ईश्वर समर्पण पूरा है तो ईश्वरीय कृपा अबाध रूप से आप पर प्रभाव डालेगी ।

३३९. अपने विचरों तथा कामनाओं को वशीभूत कीजिये, अपने विचारों का सावधानी से निरीक्षण कीजिये, मानसिक कारखाने में किसी भी बुरे विचार को न घुसने दीजिये, ईश्वर साक्षात्कार के लिये अटल श्रद्धा और प्रेम रखिये, आप जीवन के लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करेंगे ।

३४०. बुरी परिस्थितियों के विरुद्ध शिकायत न कीजिये, अपना मानसिक संतुलन बनाये रखिये, जहां भी आप रहेंगे वहां कुछ न कुछ कठिनाइयां तथा असु-विधाएँ आपको मिलेंगी ही, बुरे प्रतिकूल वातावरण से भागने की कोशिश न कीजिये, ईश्वर ने आपको वहां इसलिये रखा है कि आप शीघ्र उन्नति करें । यदि आपको सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त हों तो आप सबल नहीं बनेंगे ।

३४१. वैराग्य तथा इन्द्रिय दमन के बिना ध्यान तथा समाधि सम्भव नहीं ।

३४२. इन्द्रियों का दमन कीजिये, मधुर बोलिये, प्रिय बोलिये, सत्य बोलिये, अल्प बोलिये, कटु शब्द कभी भी न बोलिये, यही वाणी का संयम है ।

३४३. मनुष्य को एक ही इन्द्रिय पर नियंत्रण नहीं वरन् सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिये । इन्द्रियां किसी भी समय उपद्रव कर सकती हैं, सावधान रहिये ।

३४४. ईश्वर को सदा अपने साथ रखिये, यही पक्का सम्बन्ध है इसके लिये केवल ईश्वर में प्रेम रखना होगा, आपको उसे हृदय प्रदान करना होगा ।

३४५. सत्य की चट्टान पर अविचल रहिये, अपने स्वरूप अमर आत्मा को पकड़े रहिये। साधना करके उसका साक्षात्कार कीजिये ।

३४६. आपके अन्दर शक्ति का विशाल स्रोत है । आपके अन्दर आनन्द का झरना है । अन्दर ही गोता लगाइये तथा आत्म मुक्ता को निकाल लाइये, वीर बनिये ।

३४७. समय के अनुसार नाना प्रकार के कर्त्तव्य करने पड़ते हैं परन्तु आत्म साक्षात्कार करना ही मनुष्य के सारे जीवन में हर समय सब से महान् कर्तव्य

है। मनुष्य को एक क्षण भी इस कर्त्तव्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये।

३४८. साधना आरम्भ कीजिये, वीरता पूर्वक आगे बढ़ते जाइये, दृढ़ संकल्प और पुरुषार्थ में अग्रसर होइये, मन को लक्ष्य पर स्थिर कीजिये, यह दृढ़ निश्चय रखिये कि इसी जन्म में लक्ष्य को प्राप्त करना है।

३४९. केवल संन्यास और वानप्रस्थ की दीक्षा ले लेने से ही आध्यात्मिक उन्नति हो जायगी, ऐसा सोचना तो भारी भूल है; यदि संन्यास, वानप्रस्थ की दीक्षा ले लेने से मनुष्य में यह भावना जागती है कि मैं सभी व्यक्तियों से बड़ा होगया हूँ तो संन्यास वानप्रस्थ की भावना पर ही मनुष्य ने कुल्हाड़ा मार दिया। आरम्भ में ही स्पष्टतः समझ लीजिये कि सच्ची नम्रता तथा दुर्गुणों को दूर करने की सच्ची कामना में ही आपकी आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। इस आधार के बिना सारी साधनाएँ निरर्थक हैं, बिना यम नियम के साधना पैंदी हीन बर्तन में जल भरने के समान है।

३५०. निस्सन्देह आध्यात्मिक मार्ग में विविध कठिनाइयां हैं। यह छुरे की धार के समान है। आप कई बार गिरेंगे, परन्तु आपको शीघ्र उठना चाहिये, तथा अधिकाधिक उत्साह, वीरता तथा प्रसन्नता के साथ

आगे बढ़ना चाहिये, हर बाधा आपको सफलता की सीढ़ी बन जायगी।

३५१. यदि आप व्यर्थ गप शप, दूसरों की बातें जानने का कुतूहल, तथा दूसरों के मामले में पड़ने की प्रवृत्ति का परित्याग कर देंगे तो आप सब प्रकार की बाधाओं से मुक्त रहेंगे, और आपको साधना के लिये पर्याप्त समय मिलेगा।

३५२. यदि किसी मनुष्य के हृदय में प्रभु भजन तथा सत्संग की रुचि न हो तो जानो कि उसका हृदय रोगी है। यदि वह अपने इस मानस रोग का उपचार न करे तो उसे अधोगति ही प्राप्त होगी।

३५३. इन्द्रिय सम्बन्धी भोगों का सम्बन्ध तो इस शरीर के ही साथ है और मृत्यु होने पर इसका वियोग हो जाता है, अतः इसके सारे ही भोग नष्ट हो जाते हैं और उनकी आसक्ति के कारण जीव को बड़ा कष्ट होता है।

३५४. संसार में यदि कोई व्यक्ति तुम्हारी सेवा के लिये अपने किसी टहलुए को भेज देता है तो तुम सारी आयु उसका उपकार मानते रहते हो। पर जिस प्रभु ने तुम्हारे शरीर की सेवा में अनेकों टहलुए लगा रखे हैं और वे इतने सावधान हैं कि एक पल भी तुम्हारी सेवा में ढील नहीं करते, उसको तुम कभी स्मरण नहीं करते यह कितनी कृतघ्नता है।

❀ भजन ❀

(१) हे विश्वनाथ

हे विश्वनाथ मन का चंचलपना मिटादे,
कुटिया में शान्ती की आनन्द से बिठादे ।
अज्ञान मेरा मुझ से हे नाथ दूर करदे,
अज्ञानता से विगड़े कारज सभी बनादे ।
ऐसा अनुग्रह करदे, खुल जायें ज्ञान चक्षु,
इन चक्षुओं को अपने प्रकाश को दिखादे ।
दुनिया के जो विषय हैं, उनसे है जंग मेरी,
अपनी दयालुता से मुझको विजय दिलादे ।
भटका हुआ मुसाफिर बहका हुआ है फिरता,
मंजिल पे जल्द पहुँचे वह रास्ता बतादे ।
केवल तेरी लगन में बेसुध रहूँ हमेशा,
अमृत का एक प्याला ऐसा मुझे पिलादे ।

(२) हे जगत स्वामी

हे जगत स्वामी, स्वामी भेंट धरूं क्या मैं तेरी ?
माल नहीं, मेरें सम्पद नाहीं जिसको कहूँ मैं मेरी ।
इस जग में हम ऐसे विचरें, जोगी करें ज्यों फेरी ॥
धन जन यौवन अपना माने, मूरख भूला भारी ।
तुझ बिन और सहाई न मेरा, देख लिया मैं विचारी ॥

यह तन, यह मन, होय न अपना, है सब माल तुम्हारा।
जब चाहे, तब ही तू लेवे, नहीं कुछ जोर हमारा ।।
तुमरे ही दर का मैं सेवक, स्वामी लाज तुम्हें है मेरी।
चरण शरण निज अर्पण करके, देओ भक्ति बिन देरी ।।

(३) प्रभु को सुमिर सुमिर

प्रभु को सुमिर सुमिर मन मेरे, ताप कटें सब तेरे।
नाम, दान और स्नान निरर्थक, जो मन प्रीति न तेरे।
जात पात की बात न पूछे, पूछे काज भलेरे।
निज कर्तार अकाल पछाता, सोई जगत उचेरे।
दो दिन के सुख कारण मूरख, पावत उमर बखेड़े।
गंग यमुन काशी वन जंगल, हर घट में हर नेड़े।
पर जो उसको ढूंढन जावत, ऊजड़ फिरत अंधेरे।
सांच त्याग मिथ्या जिन पकड़ी, अति उन दुःख सहेड़े।
एव मात्र जो प्रभु को सुमरे, हम उसके हैं चेरे।

(४) जिनके हृदय हरि नाम बसे

जिन के हृदय हरि नाम बसे,
तिन और का नाम लिया न लिया।
जिन के वर एक सपूत भये,
तिन लाख कपूत हुआ न हुआ।
जिन के द्वार पर गंग बहे,
तिन कूप का नीर पिया न पिया।

जिन बात करी परमार्थ की,
तिन हाथ से दान दिया न दिया।
तुलसी, जिन चरण गहे हरि के,
तिन और को देव सिया न सिया* ।

(५) ॐ है जीवन हमारा

ॐ है जीवन हमारा, ॐ प्राणाधार है।
ॐ है करता विधाता, ॐ पालनहार है ॥
ॐ है दुःख का विनाशक, ॐ सर्वानन्द है।
ॐ है बल तेजधारी, ॐ करुणाकन्द है ॥
ॐ सब का पूज्य है, हम ॐ का पूजन करें।
ॐ ही के ध्यान से, हम शुद्ध अपना मन करें ॥
ॐ का गुरु मन्त्र जपने से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि प्रतिदिन होगी उज्वल, धर्म में होगी लगन ॥
ॐ जपने से हमारा ज्ञान बढ़ता जायेगा।
ॐ का ही जाप हमको मोक्ष तक पहुंचायेगा ॥

(६) साथी सारे जगे तू न जागा

वेला अमृत गया, आलसी सो रहा बन अभागा,
साथी सारे जगे तू न जागा।
भरे रहे झोलियां भाग वाले, कितने पतितों ने जीवन संभाले,
रंक राजा बने, भक्ति रस में सने, कष्ट भागे ॥ साथी...

---

* सिया—सेवन किया।

कर्म [illegible], आलसी बनके हीरा गंवाया,
उलटी होगई [illegible] गति, चोला त्यागा ॥ साथी०
धर्म मार्ग को देखा न [illegible], वेला अमृत गया न संभाला,
सौदा घाटे का कर, हाथ माथे पे धर, रोने लागा ॥साथी
प्राणी कुछ भी न तूने विचारा,
सिर से ऋषियों का ऋण न उतारा।
हँस का रूप था, पानी गदला किया, बनके कागा ॥साथी०

(७) सुन मन हित की बात सुनाऊं

नित विषयों की सोच करे तू, यह पिऊँ यह खाऊँ।
यह झांकूं, यह तान सुनूं, यह सुगन्ध लिपटाऊँ।
कभी न सोचा मूरख तूने, काम किसी के आऊँ।
इन हाथों से किसी दुःखी का, कुछ तो दर्द मिटाऊँ।
ले कृपाण रण साज संवारूं, कुछ जौहर दिखलाऊँ।
और नहीं तो आंसू तक ही, पोंछ किसी के आऊँ।
ढोर मरे सोचे बन जूता, जग के पैर बचाऊं।
जीते जी करले कुछ करनी, बारम्बार सुनाऊँ।
कहीं न रोवे अब बीते दिन, कैसे फेर बुलाऊँ।
बिन मांगे सब रस पावे, तुम को राह बताऊँ।
प्रभु भजन वह कल्प वृक्ष है, जिससे सब फल पाऊँ।

(८) मन जीत लिया जग जीत लिया

जो काम और क्रोध को छोड़ चुके,
जो लोभ से मुँह को मोड़ चुके,
वही जग के बन्धन तोड़ चुके,
वही भवसागर से पार गये।

सुख पाने वाले पाते हैं,
उस परमानन्द के चरणों में,
वही झोली भर कर ले आये,
जो उस दाता के द्वार गये।

मन वस में करने वाले ही,
मन की आशायें पाते हैं;
मन जीत लिया जग जीत लिया,
मन हार गये जग हार गये।

यही दिन हैं प्रभु चिन्तन के,
यही 'अमर' समय कुछ काम का है,
वह बात कहाँ जब आई जरा,
और जोबन के दिन चार गये।

—:o:—

मुद्रक—प्रताप प्रिंटिंग प्रस, लाहौरी गेट, दिल्ली-६